पुरखों का चरित

पहली पोथी

प्राचीन काल पूर्व खंड

प्रवक्ता

जयचन्द्र विद्यालंकार

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

इलाहाबाद

१९५५]

[मूल्य ७)

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानीमंडी,
इलाहाबाद—३

पहला प्रकाशन 　　　　　　　　१९५५

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी,
इलाहाबाद—३

न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत्

(नहीं अघाता हूं पुरखों का सुनते सुनते चरित महान्)

—महाभारत २. ५३. ११

प्रस्तावना

मेरे इकलौते बच्चे ने ३½ बरस की आयु में एक बार मुझसे कहानी सुनने का आग्रह किया तो मैंने उसे शिवाजी के कैद होने और कैद से भागने की बात सुनाई। दूसरे दिन उसने फिर कहानी सुनाने को कहा तो मैंने कहा आज अम्मा से सुन ले। वह एकदम बोला—अम्माजी से झूठी कहानी तो सुन ली, आप एक सच्ची सुनाइए! हम दोनों उसकी बात सुन कर हँस पड़े। झूठी कहानी और सच्ची कहानी नाम उसने अपने आप ही रख लिये और दोनों का अन्तर पहचान लिया था।

इसके चार बरस बाद की, सन् १९३९ की, बात है। हम लोग सह्याद्रि की गोद में इन्द्रायणी के तट पर पूना ज़िले के कामशेत गाँव में महाराष्ट्र के महान् ऐतिहासिक गोविन्दराव सरदेसाई के आश्रम में ठहरे हुए थे। सरदेसाईजी को उनका बन्धुवर्ग नानासाहब कह कर पुकारता है। उनकी आयु तब ७६ वर्ष थी (सौभाग्य से वे आज ९२ वर्ष की आयु में भी स्वस्थ हैं और पुरखों

का चरित पढ़ने-लिखने का अपना काम यथापूर्व कर रहे हैं।) अरुण (मेरे बेटे) और शान्ता (अरुण की मौसेरी बहन) को वे बड़े प्यार से स्वयं मराठी पढ़ाते थे। एक दिन उनकी पोथी में एक मजेदार कहानी आई। वे पढ़ कर आये तो मुझे सुनाने लगे—"एक होता उंदीर। त्याला मिळाला पैसा। तो गेला राजापाशीं। तो म्हणाला—राजा, राजा, पैसा कुठे ठेवूँ? ··· (एक था चूहा। उसे मिला पैसा। वह गया राजा के पास। वह बोला—राजा, राजा, पैसा कहाँ रक्खूँ?)···"

कहानी पूरी होने पर अरुण हँसा और बोला—है तो झूठी कहानी। मैंने कहा—नानासाहब को तो सच्ची कहानियाँ बहुत आती हैं, उनसे सुना कर न।

"नानासाहब को बहुत सच्ची कहानियाँ आती हैं?" उसने प्रसन्न हो कर पूछा।

"हाँ बहुत, मुझसे कहीं अधिक।"

उसी सन्ध्या को वह नानासाहब के पास गया और बोला—कोई सच्ची कहानी सुनाइए, आपको तो बहुत आती हैं। नानासाहब ने हँस कर पूछा—तुझे कोई सच्ची कहानी आती है?

"हाँ, शिवाजी की, बलभद्र की, महाराणा सांगा की बाजीराव की,..." अरुण ने गिनाना शुरू किया। नाना-साहब ने कहा—अच्छा तू पहले शिवाजी की कहानी सुना, ठीक सुनायगा तो हम भी एक सुनायेंगे। अरुण के सुना चुकने पर उन्होंने पूछा—अच्छा यह बता, शिवाजी कैद से भागा तो औरंगज़ेब ने उसे पकड़ क्यों नहीं लिया?

"सकता तो ज़रूर पकड़ लेता," अरुण ने उत्तर दिया। "सकता तो ज़रूर पकड़ लेता, वह सका ही नहीं, ठीक," नानासाहब ने प्रसन्न हो कर कहा। अरुण उनकी परीक्षा के पार उतर गया था, पुरस्कार में उसे उस दिन मराठी-मिली हिन्दी में एक सच्ची कहानी सुनने को मिली। उसके बाद यह सिलसिला चलता रहा।

प्रत्येक बच्चे को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता कि वह गोविन्दराव सरदेसाई जैसे बुजुर्ग विद्वान् के चरणों में बैठ उनके मुँह से अपने पुरखों का चरित सुन सके। पर आज जब कि देश में अपना राज है, तब भारत के प्रत्येक बच्चे का यह अधिकार है कि वैसे विद्वानों का कहा हुआ अपने पुरखों का चरित उसे पढ़ने-सुनने को प्राप्त हो।

अंग्रेज़ी गुलामी के ज़माने में हमारे देश में इतिहास-शिक्षा की बड़ी दुर्गति रही। उसका सुधार करने की माँग स्वाधीनता-संघर्ष के अंश रूप में बराबर बनी हुई थी। परन्तु स्वराज्य के पिछले आठ बरसों में हम उस माँग को बिलकुल भूल ही गये लगते हैं। देश में आज बड़ी बड़ी योजनाओं की चर्चा है, पर उस चर्चा में अपने बच्चों को अपने इतिहास की ठीक शिक्षा देने की बात सुनाई नहीं देती।

परन्तु देश के बच्चों की उस आवश्यकता को चाहे जितना भूलने भुलाने का जतन किया जाय, उसकी पुकार रह रह कर उठती ही रहेगी। यह 'पुरखों का चरित' उसी आवश्यकता को पूरा करने का विनम्र प्रयत्न है। इसकी जो पहली तीन पोथियाँ एक साथ प्रकाशित हो रही हैं, उनमें आरम्भ से ११९२ ई० तक का हमारे पुरखों का इतिहास एक सूत्र में पिरो कर आ गया है। नई से नई खोज के प्रकाश में पूरी प्रामाणिक वस्तु अधिक से अधिक सरल और रुचिकर रूप में पेश करने का जतन किया गया है। ११९२ के बाद के ऐतिहासिक चरितों को भी आगामी एकाध बरस के भीतर ही इसी प्रकार प्रस्तुत कर देना चाहता हूँ।

अपने पुरखों के चरित कहते हुए मैंने भरसक यह जतन भी किया है कि पुरखों के अपने—अर्थात् प्राचीन लेखों के—शब्दों में ही उन्हें कहूँ। प्रामाणिकता और सरलता का सामंजस्य करने में कहीं कहीं तफसील को छोड़ना पड़ा है। उदाहरण के लिए बाल की खाल उधेड़ने वाले कोई आलोचक यह न कहें कि गुप्त राजवंश मूलतः अयोध्या में स्थापित हुआ था ऐसा क्यों कहा गया है। बेशक, विद्यमान ज्ञान के आधार पर हमें ठीक ठीक यह कहना चाहिए कि वह मिथिला के पूरब या पच्छिम लगे किसी प्रदेश में अर्थात् अवध या उत्तरी बंगाल में स्थापित हुआ था। पर ऐसे सन्देह बच्चों की पोथियों में नहीं लाये जा सकते। विज्ञान तक की शिक्षा में भी अनेक बातें आरम्भ में सिखाई जाती हैं जिन्हें आगे चल कर संशोधित किया जाता है। तब भारतीय इतिहास की शिक्षा में वैसा होने पर किसी को नाक-भौं क्यों चढ़ानी चाहिए ?

इतिहास-शिक्षा के प्रश्न पर मेरा पिछले ३७ बरस से बराबर ध्यान रहा है। और मेरी यह धारणा है कि १२-१३ बरस की आयु तक के बच्चों को अपने देश के इतिहास की शिक्षा इस प्रकार चरितों के रूप में ही देना

उचित है। भारत की जनता अमुक नृवंशों से बनी है, अमुक युग में भारत की आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक दशा ऐसी थी, इत्यादि छानबीन की बातें बालक को पहले से बताने लगना अत्यन्त गलत तरीका है। ऐसी बातें बच्चे के सुकुमार मस्तिष्क के पनपने में सहायक होने के बजाय उसपर पत्थर का बोझ बन कर पड़ जाती हैं। इन चरितों में भारत के राजनीतिक जीवन के अलावा आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की भी भरपूर झाँकियाँ हैं, जो पढ़ने सुनने वाले के चित्त पर संस्कार छोड़े बिना न रहेंगी। इस प्रकार बालक के मन में तथ्यों का यथेष्ट संग्रह हो जाने के बाद ही उनकी छानबीन आरम्भ करना सार्थक और विज्ञान-सम्मत है। पहले तथ्य-संग्रह, पीछे छानबीन, यही ठीक वैज्ञानिक पद्धति है।

सब बच्चे इन कहानियों को पूरा याद रख सकेंगे ऐसी आशा हरगिज़ न करनी चाहिए। बचपन में जैसे कहानी सुनने की उत्कट रुचि होती है, वैसे ही स्मृति शक्ति भी खूब पैनी होती है। इन दोनों कारणों से इन चरितों की बहुत सी बातें पढ़ने-सुनने के बाद हमारे देश के बच्चों के मन में बैठ कर स्थायी संस्कार छोड़ जायँगी,

इसकी पूरी आशा है। इतना हो जाय तो उनकी इतिहास-शिक्षा को सफल हुआ मानना चाहिए।

ये चरित प्रथमतः बच्चों के लिए लिखे गये हैं, पर आशा है कि ये बड़ी आयु वाले ऐसे बहुत से लोगों के भी काम आयेंगे जिन्हें अपने देश का इतिहास नवीनतम खोज के आधार पर और मूल उपादानों की भाषा में सुलझे रूप में पढ़ने सुनने का अवसर पहले नहीं मिला।

इन चरितों की पहली दो पोथियाँ और तीसरी का भी कुछ अंश छप चुका था जब कि अफ़गान सरकार की यह आज्ञा प्रकाशित हुई कि हिन्दूकश या हिन्दूकुश पर्वत को अब से हिन्दकोह कहा जाय। यह संशोधन अब अगले संस्करण में किया जायगा।

यह 'पुरखों का चरित' भारत के बच्चों को पसन्द आ जाय तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक मानूँगा।

दिल्ली
७ भादों २०१२ वि०
(२२ अगस्त १९५५)

जयचन्द्र

पुरखों का चरित

पढ़ने से पहले अपने देश का प्रारम्भिक

परिचय पा लेना चाहिए।

उसके लिए इसी प्रवक्ता का किया

अपने देश का वर्णन

हमारा भारत

पढ़िए।

वह इस चरित की भूमिका है।

पुरखों का चरित—पहली पोथी

चरित-सूची

नक्शा-सूची

चित्र-सूची

पुरखों का चरित

दूसरी पोथी

में प्राचीन काल का उत्तर खंड है जिसमें चौथा—सातवाहन—और पाँचवाँ—वाकाटक-गुप्त—पर्व है। चौथे पर्व में सात और पाँचवें में पाँच चरित हैं। इनमें लगभग २०० ई० पू० से ५४० ई० तक की कहानी आ गई है।

•

तीसरी पोथी

में मध्य काल का पूर्व खण्ड है जिसमें छठा—कन्नौज साम्राज्य—पर्व है। उसमें नौ चरित हैं जिनमें लग० ५४० ई० से ११९२ ई० तक की कहानी आई है।

•

दूसरी और तीसरी पोथियाँ पहली के साथ ही प्रकाशित हो रही हैं। अगली पोथियों की राह देखनी होगी।

अपने पुरखों का चरित सुनने के साथ साथ यह भी जानना चाहिए कि मनुष्य मनुष्य कैसे बना। मनुष्य के विकास की वह बात आजकल के समूचे वैज्ञानिक विचार की बुनियाद है। उसे समझने के लिए इसी प्रवक्ता की कही हुई

मनुष्य की कहानी

पढ़िए।

मनुष्य पशु से मनुष्य कैसे बना और उसने सभ्यता का विकास कैसे किया सो इसमें अत्यन्त सरल और रुचिकर रूप में बताया गया है।

●

जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व० डा० बीरबल साहनी की सहधर्मिणी तथा पोलियोबोटानिकल इन्स्टीच्यूट (पुराण-वनस्पति-प्रतिष्ठान) लखनऊ की अध्यक्षा श्रीमती सावित्री साहनी उसके बारे में लिखती हैं कि वह 'बच्चों और बूढ़ों को समान रूप से आकर्षित करने की क्षमता रखती है। सामान्य ज्ञान की ऐसी सुन्दर पुस्तकों की हमारे देश को बड़ी आवश्यकता है।'

पुरखों का चरित

१. आर्य पर्व

१. सर्वदमन भरत

हमारे इतिहास की सब से पहली और सब से बड़ी बात हमारे आर्य पुरखों का भारत में फैलना है। उसका वृत्तान्त हमारे पुराणों में अनेक कल्पित कथाओं के बीच उलझा हुआ मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने उन कथाओं में से सत्य अंश को बड़े जतन से छाना बीना है।

उस वृत्तान्त के अनुसार राजा इक्ष्वाकु और पुरूरवस् के समय से महाभारत युद्ध के समय तक आर्यों के राज्य सरस्वती और गंगा के काँठों से अफगानिस्तान, विदर्भ (बराड) और अंग देश (मुंगेर-भागलपुर) तक धीरे धीरे फैलते गये। पुराणों के अनुसार अर्जुन पाण्डव के पोते परीक्षित् के अभिषेक से मगध के राजा नन्द के समय तक १०१५ बरस बीते। इससे महाभारत युद्ध का

समय लगभग १४५० ई० पू० आता है। इक्ष्वाकु से महाभारत युद्ध तक ९३-९४ पीढ़ियाँ हुईं।

कहानी के अनुसार इक्ष्वाकु मनु वैवस्वत (सूर्य के बेटे मनु) का बेटा था। मनु की बेटी इळा और सोम (चन्द्रमा) के बेटे बुध का पुत्र पुरूरवस् हुआ। यों इक्ष्वाकु सूर्य वंश का और पुरूरवस् (या पुरूरवा) ऐळ या चंद्र वंश का था। इक्ष्वाकु का राज्य अयोध्या में था; पुरूरवस् का प्रतिष्ठान में। प्रतिष्ठान ठीक कहाँ था इसका निश्चय नहीं हो सका, पर अन्दाज़ है कि वह सरस्वती के काँठे में था।

पुरूरवा के वंश में चौथी पीढ़ी में राजा ययाति हुआ, जिसके पाँच बेटे थे—यदु, द्रुह्यु, तुर्वसु, अनु और पूरु। यदु के वंशज यादव और पूरु के पौरव आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए।

कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक की भूमि प्राचीन भारत में मध्यदेश कहलाती थी। तुर्वसु और पूरु के वंशज प्रायः उसी में रहे। यादव लोग यमुना के दक्खिन दूर तक फैलते गये। आनवों की एक शाखा पंजाब में जा बसी और दूसरी बिहार के पूर्वी छोर पर, जिसका नाम अंग देश पड़ गया। पंजाब में आनव खूब फूले फले। द्रुह्यु का वंश

उसके और आगे उत्तर-पच्छिमी पंजाब में जा बसा।

पौरवों का राज्य कुछ काल बाद मिट गया; उनका वंश गुमनाम हो गया। पर पूरु से प्रायः ३५-३६ पीढ़ी पीछे पौरव दुःषन्त ने फिर से एक राज्य स्थापित किया। उसका राज्य गंगा-जमना काँठों के उत्तरी भाग में, कहिए आज के मेरठ मुज़फ्फ़रनगर बिजनौर जिलों में, था।

राजा दुःषन्त अपनी जवानी में एक बार अपने राज्य के उत्तरी छोर पर शिकार खेलने गया। हिमालय तराई के घने वनों को लाँघती हुई उसकी सेना एक खुले सुनसान में जा निकली, जिसके आगे एक मनोहर वन दिखाई दिया। उस वन के परले छोर पर मालिनी नदी बहती थी और उसके किनारे कण्व ऋषि का आश्रम था। मालिनी अब भी मालिन कहलाती है। वह गढ़वाल में तराई के पहाड़ों से निकल कर बिजनौर ज़िले में से होती हुई गंगा में जा मिलती है। नजीबाबाद शहर उसी के तट पर बसा है। गढ़वाल तराई में चौकीघाटा के पास किनकसोत नामक कुञ्ज को, जहाँ से उसका उद्गम है, स्थानीय लोग अब भी कण्व-आश्रम का स्थान बताते हैं।

आश्रम को देख राजा दुःषन्त ने सेना बाहर छोड़ दी

कुरु-पञ्चाल, उत्तरी अंश
पैमाना अं० मील
७८
७९
३०
२९
२८
देव प्रयाग
ऋषीकेश
हरद्वार
लालढांग
चौकीघाटा
कोटद्वार
नजीबाबाद
शुक्रताल
बिजनौर
हस्तिनापुर
अलमोड़ा
नैनीताल
काठगोदाम
मुरादाबाद
रामपुर
गढ़मुक्तेश्वर
शेरगढ़
संभल
चंदौसी
रामनगर
(अहिच्छत्रा)
बरेली
अनूपशहर
आँवला
आलगढ़
सहसवां
बदायूँ
तिलहर
अलीगढ़
सोरों
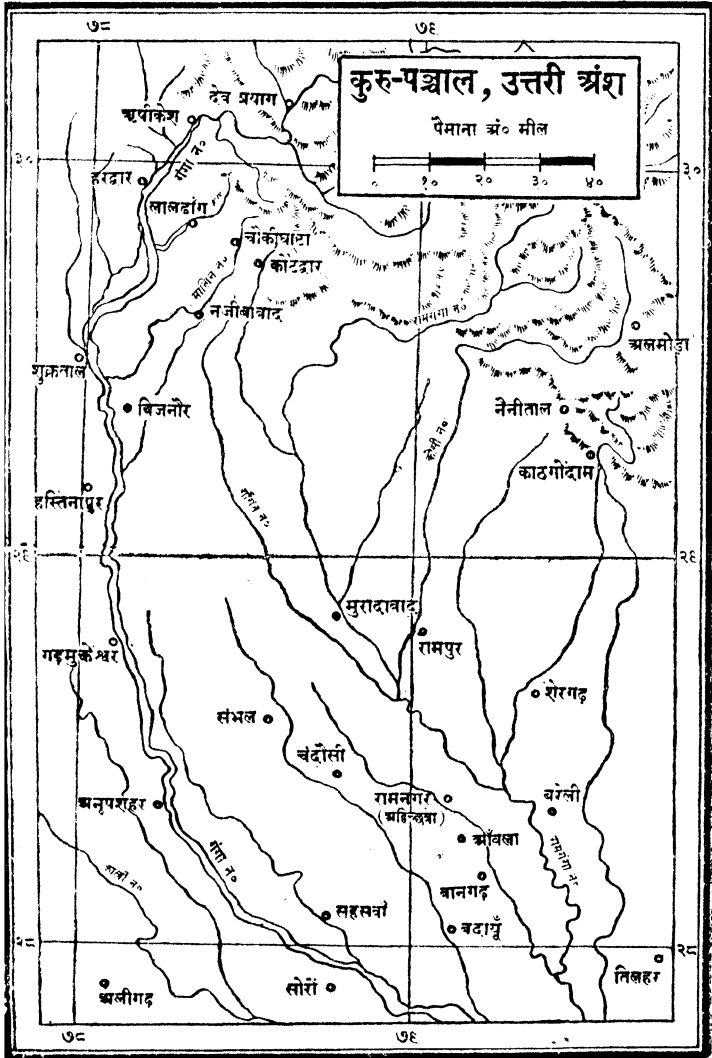
नक्शा—१

और कुछ साथियों के साथ आगे बढ़ा। ऋषि के स्थान को जाते हुए वह अकेला रह गया। वहाँ किसी को न पा कर उसने पुकारा तो कुटिया के भीतर से तापसी-वेष-धारिणी लक्ष्मी सी रूपिणी कन्या निकली जिसने राजा का स्वागत किया। वह कण्व की बेटी शकुन्तला थी। उसने बताया कि कण्व बाहर गये हुए हैं। दुःषन्त और शकुन्तला दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। दुःषन्त ने विवाह का प्रस्ताव किया। शकुन्तला के यह कहने पर कि मेरे पिता की राह देखो, दुःषन्त ने कहा जहाँ समान स्थिति के युवक युवती दोनों एक दूसरे के लिए खिंचाव अनुभव करते हों वहाँ क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार वे स्वयं गान्धर्व विवाह कर सकते हैं। इसपर शकुन्तला ने कहा यदि ऐसा है तो मैं इस शर्त पर विवाह कर सकती हूँ कि मेरा जो बेटा हो वह राज्य का उत्तराधिकारी हो। दुःषन्त ने यह शर्त मान ली और उन दोनों का वहीं विवाह हो गया। दुःषन्त यह कह कर चला गया कि शीघ्र तुम्हें मँगवा भेजूँगा।

कण्व के वापिस आने पर शकुन्तला झेंप के मारे उनके सामने न आई, पर कण्व ने उसकी बात जानी तो उसे आशीर्वाद दिया। दुःषन्त अपनी राजधानी जा कर

मानो अपनी बात भूल गया। शकुन्तला कण्व के आश्रम में ही रहती रही। वहीं उसकी कोख से पराक्रमी बालक पैदा हुआ जो बचपन में ही जंगली जानवरों को पकड़ कर उनके साथ खेलता और उन्हें आश्रम के पेड़ों में बाँध लेता! उसके वैसे करतब देख आश्रमवासियों ने उसका नाम सर्वदमन रक्खा।

उस बालक के छः बरस का हो जाने पर अन्त में कण्व ने शकुन्तला को दुःषन्त के दरबार में भेजा। पर दुःषन्त ने तब भी ऐसा दिखाया मानो वह उसे पहचानता ही नहीं! बात यह थी कि एक तो उसका और शकुन्तला का सम्बन्ध 'लोक-परोक्ष' हुआ था, लोग उस विवाह को न जानते थे, और दूसरे प्राचीन आर्यावर्त में राजा का बेटा भी तब तक उत्तराधिकारी न बन सकता था जब तक प्रजा के मुखिया उसे राजा पद के लिए 'वरें' अर्थात् चुनें नहीं। पर जब शकुन्तला दुःषन्त को खरी-खरी सुना कर यह कहती हुई चल पड़ी कि यदि असत्य बोलने में ही तुम्हारा जी लगा है और अपने अन्तरात्मा पर भी भरोसा नहीं है तो मैं जाती हूँ, तब कहते हैं अन्तरिक्ष से 'अशरीरिणी वाणी' दुःषन्त और उसके मन्त्रियों को यह पुकारती हुई सुनाई दी

कि शकुन्तला ने जो कहा है वह सच है। वह 'अशरीरिणी वाणी' हमारे विचार में उनके अन्तःकरण की ही पुकार थी। उस दशा में दुःषन्त ने अपनी पत्नी और बेटे को स्वीकार किया। उस बालक का नाम भरत रक्खा गया।

बड़ा होने पर भरत सार्वभौम और चक्रवर्त्ती हुआ—चक्रवर्त्ती यानी जिसके रथ का चक्र सारे आर्यावर्त्त में विना रोक चले। अवध की सीमा से सरस्वती के काँठे तक की भूमि अर्थात् आजकल के हिन्दी की खड़ी और बाँगरू बोलियों के पूरे क्षेत्र उसके सीधे शासन में थे। न केवल उसके वंशज प्रत्युत उसके पूर्वज भी उसके नाम से भारत कहलाने लगे†। हमारे देश का नाम भी उसी सर्वदमन भरत की याद दिलाता है।*

---

† महाभारत १, ६९, ४९।

* महाभारत शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर। महाकवि कालिदास ने अपने अभिज्ञानशाकुन्तल में अंगूठी की बात की कल्पना कर दुःषन्त के शकुन्तला को भूल जाने और फिर पहचानने की मनोरञ्जक कहानी बना दी है।

२. मर्यादा-पुरुषोत्तम राम

गंगा-जमना दोआब के पूरब गोमती और घाघरा नदियों के काँठे हैं। घाघरा या सरयू के दक्खिनी तट पर अयोध्या नगरी है। उसी के नाम से वह प्रदेश अवध कहलाया। उसका पुराना नाम कोशल था।

कोशल में इक्ष्वाकु के वंशज राज करते थे। उनमें इक्ष्वाकु से प्रायः ६३वीं पीढ़ी पर राजा दशरथ हुआ। दशरथ की तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। कौशल्या कोशल की थी, कैकेयी केकय देश की। पंजाब में वितस्ता (जेहलम) नदी के दोनों पासों का प्रदेश केकय था। कौशल्या से दशरथ को रामचन्द्र नामक बेटा हुआ, कैकेयी से भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न।

चारों बेटों ने पहले वसिष्ठ ऋषि के पास शिक्षा पाई।

फिर विश्वामित्र ऋषि राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए बुला ले गया। विश्वामित्र का आश्रम गंगा-सरयू-संगम के सामने गंगा के दक्खिन था। वहाँ उसने दोनों कुमारों को अस्त्र और शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी। फिर वह उन्हें मिथिला लिवा ले गया जहाँ सीरध्वज जनक का राज्य था।

मिथिला उत्तरी बिहार का पुराना नाम है। उसे विदेह भी कहते थे। जनक वहाँ के राजवंश का नाम था। इस समय जो जनक राज कर रहा था उसने अपनी बेटी सीता का पति चुनने की यह शर्त लगा रक्खी थी कि उसके यहाँ पड़े हुए एक पुराने कड़े धनुष को झुका कर जो उसपर डोरी चढ़ा दे, ऐसे किसी राजकुमार को सीता विवाह में दी जायगी। अनेक राजकुमार उस धनुष को उठाने और झुकाने के प्रयत्न में विफल हुए थे। रामचन्द्र ने उसे उठा कर उसपर डोरी चढ़ा दी। राम सीता का विवाह हो गया।

उनके अयोध्या लौटने पर बूढ़े राजा दशरथ ने रामचन्द्र का अभिषेक कर स्वयं राजकाज से छुट्टी लेनी चाही। प्राचीन भारत में जिसे राजा बनना हो उसका अभिषेक होने पर ही वह राज-काज हाथ में ले सकता था।

अभिषेक उसी का होता था जिसे प्रजा 'वर' अर्थात् चुन ले। राजा का बेटा भी तभी राजा बन सकता जब प्रजा के मुखिया उसे वर लें या पसन्द कर लें। उसके बाद अभिषेक-संस्कार होता जिसमें राज्य के सब गाँवों के मुखिया और कारीगर इकट्ठे होते। वे लोग राजा पर पानी छिड़कते। इस काम के लिए गंगा सरस्वती आदि नदियों के पानी ला कर रक्खे जाते और जहाँ का वह राजा हो उस प्रदेश के किसी तालाब का पानी भी उन पानियों में मिलाया जाता। पानी छिड़कने के बाद राजा को मुकुट पहनाया जाता और वह यह प्रतिज्ञा करता कि यदि मैं प्रजा का बिगाड़ करूँ और प्रजा के तईं सच्चा न रहूँ तो मेरी जान भी ले ली जाय। इस प्रतिज्ञा से राजा पर यह ज़िम्मेदारी डाली जाती कि वह देश का शासन न्याय से चलावे जिसमें छोटे बड़े सब के साथ समान बर्त्ताव हो, किसी का पक्षपात या लिहाज़ न हो, चोरी डकैती आदि अपराध न होने दे, बाहर के शत्रुओं से देश की रक्षा करे, कृषि धन-धान्य और गौओं की बढ़ती करे, इत्यादि। इस ज़िम्मेदारी को निभाने के लिए उसे प्रजा से उपज़ का एक भाग लेने का अधिकार दिया जाता। आगे चल कर यदि

कभी राजा उस प्रतिज्ञा को तोड़ दे या न निभा सके तो प्रजा उसे हटा सकती थी।

दशरथ ने राम के अभिषेक के लिए प्रजा की स्वीकृति ले ली थी, पर तब रानी कैकेयी ने उसे उसके एक वचन की याद दिलाई। प्रचीन भारत में राजा और सरदार लोग रथों में चढ़ कर युद्ध को जाते थे। एक लड़ाई में दशरथ घायल और बेहोश हो गया था। कैकेयी उसके साथ थी; वह उसे रथ में लिये रथ को हाँक कर बचा लाई थी। दशरथ ने तब कैकेयी को दो 'वर' अर्थात् मुँहमाँगी बातें देने का वचन दिया था। अब कैकेयी ने ये वर माँगे कि राम को चौदह बरस वनवास और भरत को राज दिया जाय। प्राचीन भारत के लोग अपने वचन से टलने को मौत से भी बुरा मानते थे। दशरथ को लाचार कैकेयी की बात माननी पड़ी। कहते हैं राम को जब अभिषेक के लिए बुलाया गया तथा जब वन के लिए विदा किया गया, तब वह एक समान ही प्रसन्न-वदन दिखाई दिया।

भारत के बड़े भाग में तब वन फैले थे और उनमें फल-मूल और शिकार से बहुत लोग गुज़र करते थे। उन वनों में राक्षस अर्थात् कच्चा मांस खाने वाले लोग भी

रहते थे। राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन को विदा हुए। अयोध्या से वे लोग प्रयाग आये और वहाँ से जमना पार कर चित्रकूट, जो आजकल के बाँदा ज़िले में है। राजा दशरथ से उनका बिछोह न सहा गया और वह चल बसा।

भरत तब अपनी ननिहाल में था। अयोध्या लौटने पर उसने सब हाल जाना तो अपनी माँ के कार्य पर लज्जित हुआ। उसने भाई के पास वन में जा कर उससे लौटने की विनती की, परन्तु उसके समझाने पर अयोध्या लौट आया और भाई के प्रतिनिधि रूप में राज्य सँभाला। भारत के राज्यों में तब यह रिवाज था कि यदि राजा का बड़ा बेटा योग्य हो तो प्रजा उसी को पिता के बाद राजा चुनती थी। बड़ा बेटा योग्य न हो तो उसके छोटे भाई को, और कोई भाई योग्य न हो तो किसी और पुरुष को। राम की योग्यता सब की मानी हुई थी और प्रजा ने भी उसे पसन्द किया था, इसलिए राम की जगह गद्दी पर बैठना भरत को पसन्द न था।

चित्रकूट से, कहते हैं, राम लक्ष्मण सीता गोदावरी तट पर पंचवटी गये और वहीं रहने लगे। गोदावरी के काँठे
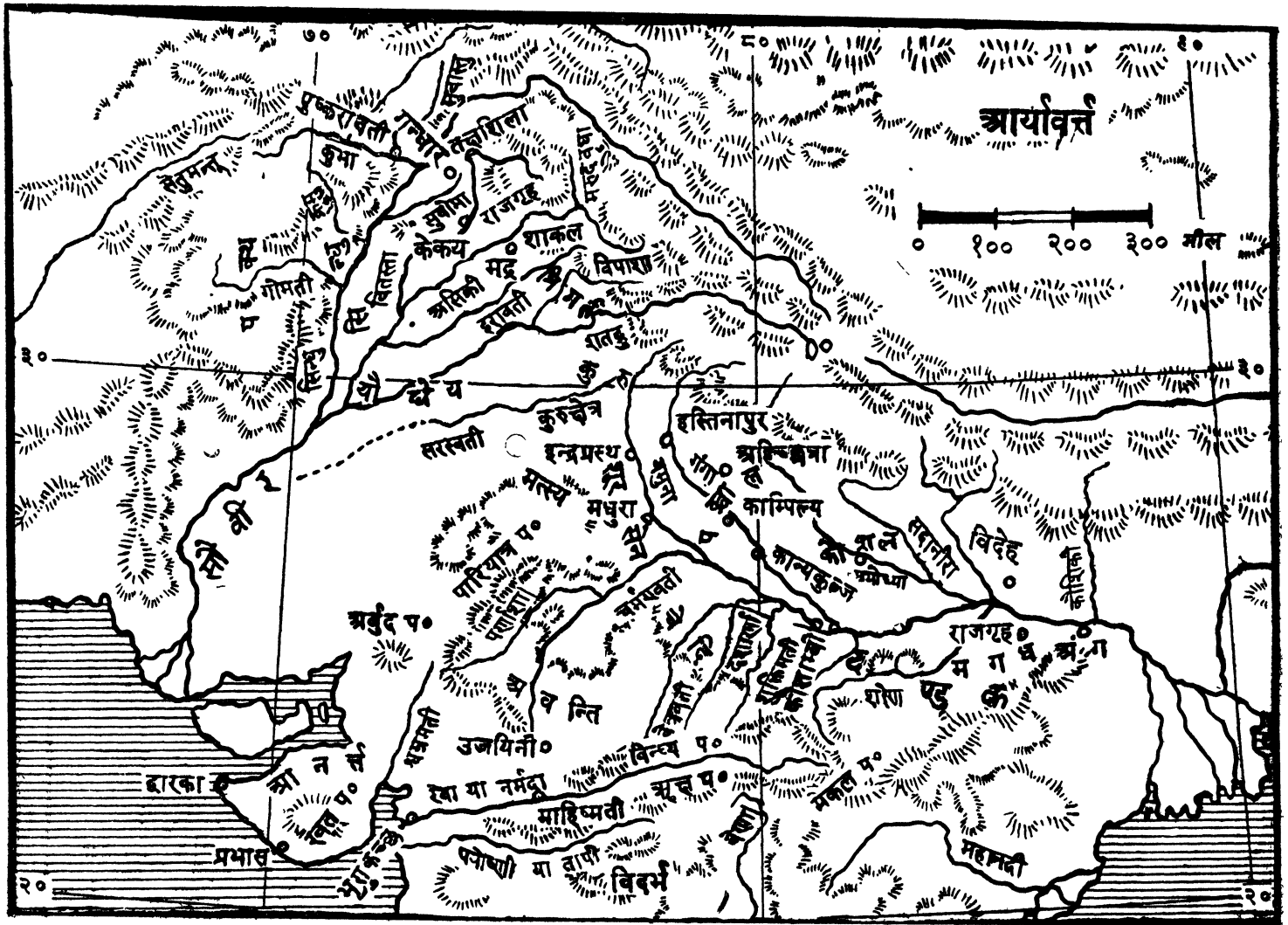
नक्शा—२ आर्यावर्त्त रामचन्द्र और महाभारत युद्ध के समय

नकशा—३ पच्छिमी मध्य एशिया (देखिए पर्व २ चरित ८ आदि)
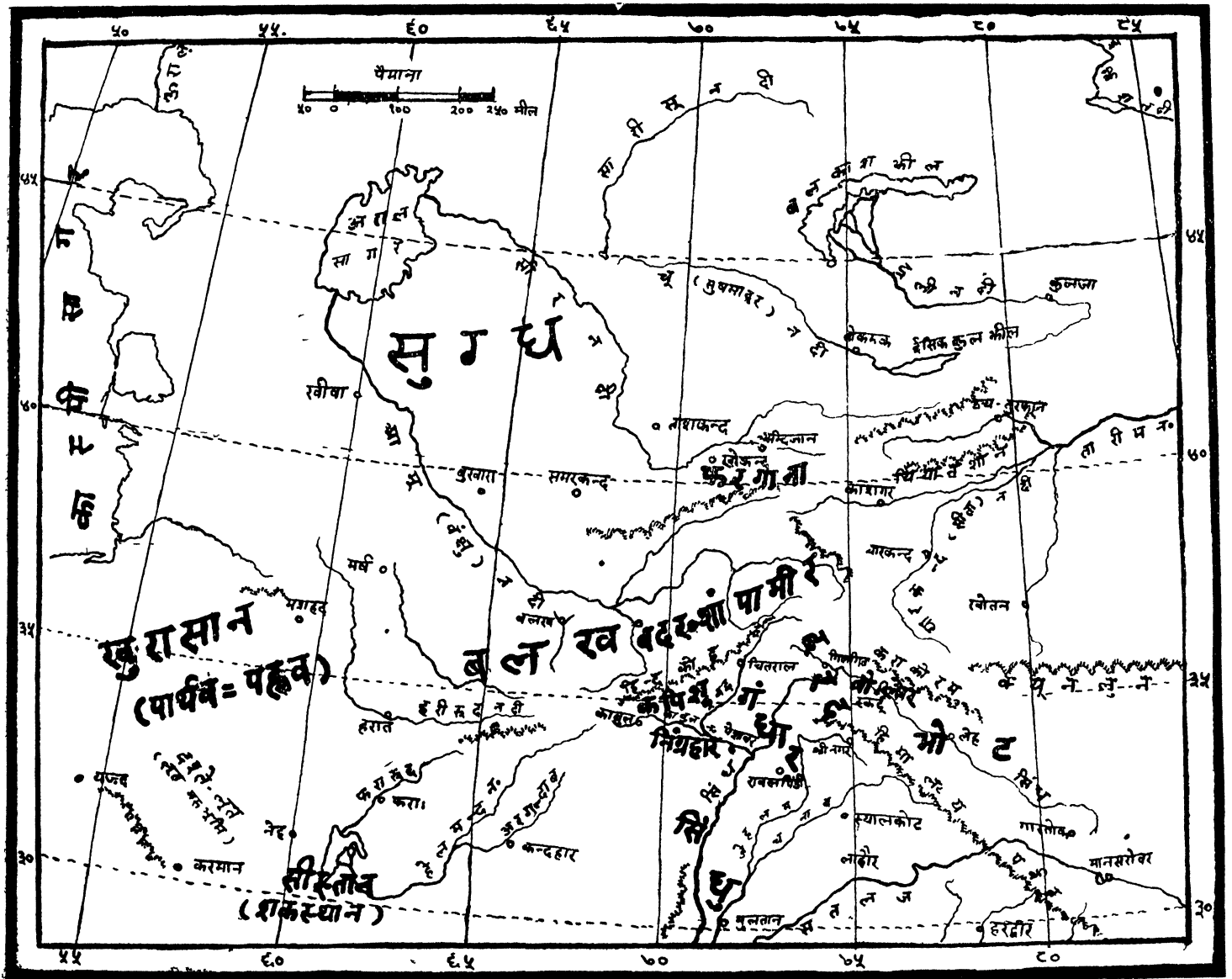
में ही राक्षसों की बस्ती जनस्थान भी थी। राम के वनवास के दस बरस बीत चुके थे कि लंका के राक्षसों का राजा रावण सीता को हर ले गया। सीता को खोजते खोजते राम-लक्ष्मण पम्पा सरोवर पहुँचे, जहाँ उनकी सुग्रीव "वानर" और उसके मन्त्री हनुमान से भेंट हुई। सुग्रीव किष्किन्धा के वानर राजा वाली का निर्वासित भाई था। राम ने वाली को मार सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया, उसकी और हनुमान की सहायता से सागर पर सेतु बना वानरों की सेना के साथ लंका में प्रवेश किया और घोर युद्ध में रावण को मार सीता को वापिस लिया।

इस कहानी में कल्पना की रंगत बहुत मिल चुकी है। पुराने जमाने में जंगलों में विचरने वाले लोग पशु-पक्षी-वनस्पतियों को पूजते और जिस जाति के लोग जिसे पूजते उसके चित्र से अपने देह को आँकते भी थे। उसी वस्तु के नाम से उस जाति का नाम भी पड़ जाता। वानर प्राचीन भारत की कोई मनुष्यजाति थी। राक्षस भी मनुष्य थे जिनमें कच्चा मांस खाने का रिवाज था।

लंका से आजकल सिंहल द्वीप माना जाता है और पंचवटी से नासिक। पर राम की पुरानी कहानी रामायण

के अनुसार चित्रकूट से पंचवटी लगभग ७८ और किष्किन्धा ९६ मील थी। लंका किष्किन्धा से दूर न थी। विन्ध्याचल और सातपुड़ा में गोंड लोग रहते हैं जो अपने को रावण का वंशज मानते आये हैं। गोंडी बोली में किसी भी नदी को गोदारि और टापू दोआब या टीले को लंका कहते हैं। यह सब देखते हुए इतिहास की छानबीन करने वाले इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लंका अमरकण्टक की चोटी थी जिसके एक ओर से नर्मदा निकली है और दूसरी ओर से सोन, तथा जिसकी तलेटी में बड़े बड़े जलाशय हैं। उसके आसपास गोंडों की बस्तियाँ हैं। उसके पड़ोस में छोटा नागपुर में ओराँव लोग रहते हैं, उन्हीं के पुरखा वानर थे।

वनवास से लौट कर रामचन्द्र ने कोशल का बड़े न्याय से शासन किया। आज तक भी कोई शासन बहुत अच्छा होता है तो हम उसे राम-राज्य कहते हैं। राम को हम मर्यादापुरुषोत्तम कहते हैं। मर्यादा माने सीमा या हद। मर्यादापुरुषोत्तम अर्थात् हद दर्जे का अच्छा पुरुष जो सब पहलुओं से खरा हो।

भरत को अपने ननिहाल का केकय का राज मिला।

केकय के पच्छिम आजकल के रावलपिंडी-पेशावर प्रदेश में द्रुह्यु के वंशज गन्धार लोग रहते थे। गन्धार के दक्खिन का सिन्धसागर दोआब और सिन्ध नदी के पच्छिमी तट का डेरा-इस्माइलखाँ डेरा-गाज़ी खाँ ज़िलों का प्रदेश सिन्धु कहलाता था। भरत ने गन्धार और सिन्धु भी जीते। कहते हैं भरत के दो बेटे तक्ष और पुष्कर थे, जिन्होंने गन्धार में तक्षशिला और पुष्करावती नगरियाँ बसाईं। पुष्करावती स्वात और काबुल नदियों के संगम पर थी।* स्वात को तब सुवास्तु और काबुल को कुभा कहते थे।

---

* पुष्करावती के खँडहरों में अब पड़ांग और चारसद्दा बस्तियाँ हैं। उसके पुराने खँडहर और विद्यमान बस्तियाँ मिला कर आठ नगर हैं, इसलिए उनका इकट्ठा नाम हश्तनगर है।

३. महाभारत युद्ध

पौराणिक वृत्तान्त के अनुसार भरत के वंश में उससे सातवीं पीढ़ी पर राजा हस्ती हुआ, जिसने गंगा किनारे हस्तिनापुर बसाया। मेरठ ज़िले में हसनापुर कस्बा अब उसके स्थान को सूचित करता है। फिर इस राज्य का पूरबी हिस्सा अलग हो कर पंचाल कहलाने लगा। आजकल का रुहेलखंड (मुरादाबाद-बरेली प्रदेश) उत्तर पंचाल था और उसके दक्खिन गंगा पार आजकल का इटावा-फर्रुखाबाद-कानपुर प्रदेश दक्षिण पंचाल, जो अब भी पचार कहलाता है। ये सब पौरव राज्य थे। यादवों के राज्य जमना के पच्छिम-दक्खिन मथुरा से गुजरात और बराड़ तक फैले थे।

हस्तिनापुर में आगे चल कर राजा कुरु हुआ। उसके

नाम से हस्तिनापुर का प्रदेश कुरुदेश और सरस्वती का काँठा कुरुक्षेत्र कहलाने लगा। कुरु के वंशज कौरव कहलाये। फिर उस वंश की एक शाखा में राजा वसु हुआ जिसने जमना-गंगा के दक्खिन दक्खिन आजकल के अलवर से गया तक नया साम्राज्य खड़ा किया। इस साम्राज्य में चम्बल से केन नदी तक चेदि-यादवों का प्रदेश था जिसे अब हम बुन्देलखंड कहते हैं। साम्राज्य के पूरबी छोर पर मगध प्रदेश था जिसमें आजकल के पटना-गया ज़िले थे। वसु के बाद यह साम्राज्य उसके पाँच बेटों में बँट गया।

कौरवों की हस्तिनापुर वाली बड़ी शाखा में आगे चल कर धृतराष्ट्र और पाण्डु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र आँखों से लाचार था। प्राचीन भारत के लोग ऐसे आदमी को राजगद्दी पर नहीं बैठने देते थे जो किसी अंग से हीन हो—अर्थात् कोई अंधा, लँगड़ा या लूला राजा नहीं बन सकता था। इसलिए छोटा होते हुए भी पांडु को राजगद्दी मिली।

धृतराष्ट्र की रानी गान्धारी अर्थात् गन्धार देश की थी, जिससे उसके बहुत से बेटे हुए जिनमें दुर्योधन जेठा था। पाण्डु की दो रानियाँ थीं, कुन्ती और माद्री। माद्री

यानी मद्र की। मद्र लोग रावी और चनाब के बीच रहते थे, उनकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। माद्री स्त्रियाँ प्राचीन भारत में सब से सुन्दर मानी जाती थीं। कुन्ती से पाण्डु के तीन बेटे हुए—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन; माद्री से दो—नकुल और सहदेव। पाण्डु के बेटे पाण्डव कहलाये। धृतराष्ट्र के बेटे कौरव ही कहलाते रहे।

दुर्योधन और भीम एक ही दिन पैदा हुए थे। युधिष्ठिर यों सब भाइयों में बड़ा था, पर दुर्योधन बड़े भाई का बड़ा बेटा होने से राज्य पर अपना अधिकार मानता था। पीछे पांडु वानप्रस्थ बन गया अर्थात् वन में रहने चला गया। तब धृतराष्ट्र राज करने लगा। धृतराष्ट्र और पांडु का ताऊ भीष्म जिसने विवाह नहीं किया था, तब तक जिंदा था। उसे सब भीष्म पितामह अर्थात् भीष्म दादा कहते थे। उसी की देखरेख में राजकाज चलता रहा।

हस्तिनापुर के पास द्रोण नाम का गरीब ब्राह्मण तब शस्त्रास्त्र चलाने में बहुत योग्य प्रसिद्ध था। भीष्म ने उसे कौरवों पाण्डवों की शिक्षा के लिए नियत किया। धनुष बाण से सब तरह की निशानेबाजी, ढाल तलवार गदा और अन्य शस्त्रास्त्रों की लड़ाई उसने उन राजकुमारों को सिखाई।

अर्जुन उन सब भाइयों में निशानेबाजी में सब से योग्य और द्रोण आचार्य का प्रिय था। गदा की लड़ाई में भीम सब से योग्य था। उनकी योग्यता से दुर्योधन को बड़ी चिढ़ लगती थी।

कौरव-पाण्डवों की शिक्षा पूरी होने के बाद द्रोणाचार्य ने उनकी सहायता से पंचाल के राजा द्रुपद से उत्तर पंचाल छीन लिया, पर उसे दक्षिण पंचाल में रहने दिया।

इसी समय वसु के वंश में मगध में राजा जरासन्ध हुआ जिसने चौगिर्द प्रदेशों को जीत या प्रभाव में ला कर अपना साम्राज्य बना लिया। पूरब तरफ उसने अंगों का देश (मुंगेर-भागलपुर) जीता। पच्छिम तरफ काशी कोशल और चेदि पर आधिपत्य जमाया। चेदिराज शिशुपाल जरासन्ध के साम्राज्य का मुख्य सेनापति बना। चेदि के उत्तरपच्छिम मथुरा में अन्धक-यादवों का राजा कंस था जो जरासन्ध का दामाद था। उसने जरासन्ध के भरोसे अपनी प्रजा को पीडित किया। प्रजा ने तब वृष्णि-यादवों से सहायता माँगी। वृष्णियों के कृष्ण नामक नौजवान ने, जो वसुदेव का बेटा था, कंस को मार डाला। जरासन्ध का क्रोध कृष्ण और अन्धक-वृष्णियों पर उमड़ पड़ा। उन्हें

मथुरा छोड़नी पड़ी और वे सुदूर द्वारका चले गये, जहाँ अन्धक-वृष्णियों का 'संघ' (गणराज्य) स्थापित हुआ। उस संघ के दो मुखिया, एक अन्धकों में से एक वृष्णियों में से, इकट्ठे चुने जाते थे। सो उग्रसेन और कृष्ण उसके मुखिया चुने गये।

द्रोणाचार्य के पास शिक्षा समाप्त कर कौरव पाण्डव घर में रहने लगे। उनकी डाह बढ़ती ही गई।

एक बार वारणावत गाँव में मेला लगने वाला था और पाण्डव वहाँ जाने वाले थे। दुर्योधन ने वहाँ एक 'लाक्षागृह' (लाख का घर) बनवा दिया और ऐसा षड्यन्त्र रचा कि पाण्डव कुन्ती के साथ जब उसमें जा कर सोयें, तब उसमें आग लगा दी जाय। उस ज़माने में भारत में जंगल की बहुतायत होने से राजाओं के महल तक लकड़ी के बनते थे। उस मकान के जोड़ों में सन राल मूँज आदि भरी थीं और उसकी भीतों पर घी तेल चर्बी और लाख मिली हुई मिट्टी का लेप किया गया था। पाण्डव उस लेप की गन्ध से उसका भेद भाँप गये और उस घर से निकल गये। वह घर जल गया और बहुत लोगों ने समझा कि पाण्डव मर गये। पर वे ब्राह्मणों का भेस धर

घूमते भटकते रहे।

वे भटकते फिरते थे कि दक्षिण पंचाल के राजा द्रुपद ने अपनी बेटी कृष्णा द्रौपदी का स्वयंवर रचा और वे उसमें जा पहुँचे। वहाँ भी एक धनुष रक्खा था जिसपर डोरी चढ़ानी थी। फिर वहीं एक कड़ाही में तेल रक्खा था, जिसके ऊपर एक चक्र में मछली घूमती थी। तेल में उस मछली की परछाँईं देखते हुए उसकी आँख को उस धनुष से बाण चला कर वेधना था।

उस स्वयंवर में आये हुए क्षत्रिय कुमारों में से कोई भी यह करतब न कर सका। तब कर्ण नाम का हस्तिनापुर का नौजवान जो निशानेबाजी में अर्जुन की बराबरी करता था, धनुष उठाने लगा। कर्ण भी वास्तव में कुन्ती का बेटा था जो उसके विवाह के पहले पैदा हुआ था। उसे उसने लाज के मारे नदी में बहा दिया था और एक सूत (रथ हाँकने वाले) ने उठा कर पाल लिया था। पीछे दुर्योधन ने उसे बढ़ावा दिया था। कर्ण उस धनुष को उठाने चला तो द्रौपदी ने कहा, मैं सूतपुत्र से विवाह न करूँगी। वह लज्जित हो कर बैठ गया। तब ब्राह्मण का भेस धरे हुए अर्जुन उठा और उसने धनुष पर डोरी चढ़ा कर तेल में

देखते हुए मछली को बाण से वेध डाला। द्रौपदी ने उसे जयमाल पहना दी।

पाण्डवों को लोगों ने पहचान लिया। वे द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर वापिस आये। उसके बाद उन्होंने राज्य में हिस्सा माँगा। तब भीष्म पितामह ने बीच में पड़ कर यह तय कराया कि कुरुक्षेत्र और मथुरा के बीच जमना के दाहिने किनारे जो खाण्डव वन है उसे साफ कर पाण्डव वहाँ बस जाँय। पाण्डवों ने खाण्डव वन को जला कर वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया, जिसका नाम दिल्ली के पुराने किले के पास के इन्दरपत गाँव में अब तक चला आता है।

पाण्डव भी सम्राट् बनना चाहते थे। पर उनके पड़ोस में मथुरा तक जरासन्ध की तूती बोलती थी। इस दशा में कृष्ण और पाण्डवों की मैत्री हुई। युद्ध में वे जरासन्ध का सामना न कर सकते थे। पर कृष्ण भीम और अर्जुन ने मगध जा कर उसे मार डाला। उसका साम्राज्य तब डाँवाँ-डोल हो गया। दुर्योधन की सहायता से कर्ण अंग का राजा बन बैठा। चेदि का शिशुपाल अपने पड़ोसियों में प्रबल हो गया।

पाण्डवों ने दिग्विजय करके अर्थात् चौगिर्द के राज्यों से अधीनता मनवा कर राजसूय यज्ञ किया, जैसा कि प्राचीन भारत में सम्राट् बनने वाले किया करते थे। कई पड़ोसी राजा खुशी से, कई डर और दबाव से उसमें शामिल हुए। वहाँ शिशुपाल की कृष्ण से लागडाँट इतनी बढ़ी कि कृष्ण ने उस यज्ञ में ही उसे मार डाला।

पाण्डवों की शक्ति यों बढ़ी देख कौरवों के मामा शकुनि ने उन्हें पाण्डवों को हराने की एक जुगत सुझाई। उस ज़माने में भारत के बड़े लोगों में जुआ खेलने का बड़ा व्यसन था। शकुनि और दुर्योधन ने पाण्डवों को पासा खेलने का निमन्त्रण दिया। उसमें वे अपना सब कुछ हार बैठे और उन्हें बारह बरस का वनवास और एक बरस का अज्ञातवास मिला।

उनके पीछे दुर्योधन ने अपना पक्ष मज़बूत किया। पाण्डव तेरहवें साल अपने राज्य के पड़ोस में मत्स्य (आजकल के अलवर) के राजा विराट् के यहाँ आ गये। वह साल बीतने को था कि कौरवों ने अपने पड़ोसी त्रिगर्त्त (जलन्धर-हुशियारपुर-कांगड़ा) के राजा के साथ मत्स्यों पर धावा मारा और उनके डंगर लूट ले चले। पाण्डवों

की सहायता से विराट् ने उन्हें हराया।

उसके बाद पाण्डवों ने कृष्ण की मार्फत अपना राज्य वापिस माँगा। पर दुर्योधन ने कहा, मैं युद्ध के बिना सुई की नोक भर भी नहीं दूँगा। दोनों पक्षों में युद्ध ठन गया और वह घरेलू आग भभक कर भारत भर में फैल गई।

त्रिगर्त्त का राजा कौरवों का मित्र था, गन्धार का शकुनि उनका मामा था। सिन्धु का जयद्रथ दुर्योधन का बहनोई था। इन तीनों के दबाव से पंजाब के प्रायः सब राज्यों ने कौरवों का पक्ष लिया। इसी तरह कर्ण के दबाव से पूरबी राज्यों ने। पर 'मध्यदेश' (पंजाब-बिहार के बीच के प्रदेश) और गुजरात के अधिकतर राज्य पाण्डवों की तरफ हुए। कृष्ण निःशस्त्र सलाहकार रूप में पाण्डवों की तरफ हुआ। वह खुल कर उनकी तरफ से नहीं लड़ा, क्योंकि बहुत से यादव भी कौरवों की तरफ थे।

पाण्डवों की सेनाएँ मत्स्य में जुटने लगीं, कौरवों की सेनाएँ पंजाब के पूरबी छोर और हस्तिनापुर पर। सन्धि की बातचीत विफल होने पर पाण्डव सेना उनके

बीच उत्तर को बढ़ी और कुरुक्षेत्र पर दोनों बाढ़ें आ टकराईं। अठारह दिन के घमासान युद्ध के बाद पाण्डवों की जीत हुई। वे कुरु देश के राजा और आर्यावर्त्त के सम्राट् हुए।

यह बड़ा युद्ध भरत के वंशजों में हुआ, इसलिए यह महा-भारत युद्ध कहलाया।

---

२. महाजनपद पर्व

चित्र १

रामचन्द्र अहल्या का उद्धार करते हुए
देवगढ़ (जिला झाँसी) के गुप्त युग के विष्णु-मन्दिर में मूर्त्त दृश्य
[भारतीय पुरातत्त्व विभाग]

चित्र ८
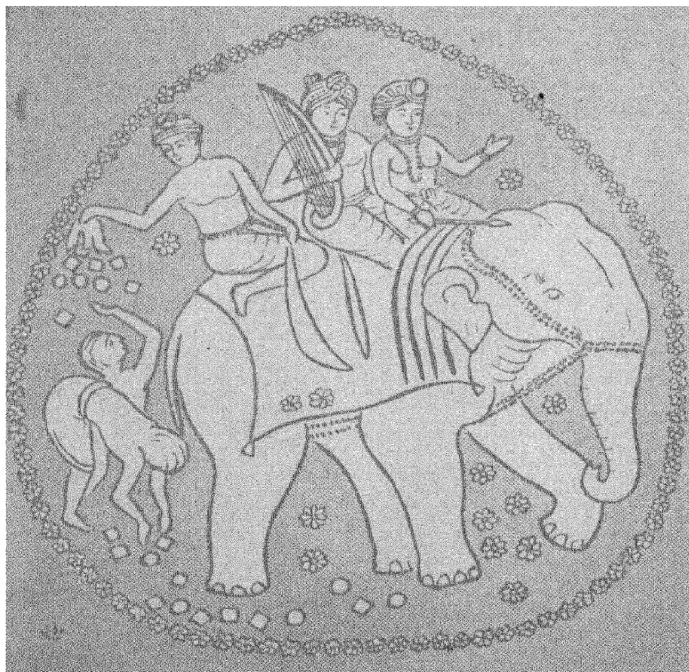
वासवदत्ता-हरण
शुंग युग के मिट्टी के ठिकरे पर के चित्र का पुनरुद्धार
श्री रामावतार चेतन द्वारा

१. महाजनक की समुद्र-यात्रा

महाभारत युद्ध के बाद भी आर्य राज्यों का भारत के पूरबी और दक्खिनी कोनों की तरफ बढ़ना जारी रहा। वंग अर्थात् पूरबी बंगाल में स्थापित होने के बाद आर्य उपनिवेशक समुद्र-तट के साथ साथ आगे के देशों को जाने लगे। जिस विशाल प्रायद्वीप के पच्छिमी भाग को अब हम बरमा कहते हैं, वह तब जंगलों से ढका था और उसे वे 'सुवर्णभूमि' कहते थे। वहाँ जाने में खतरे बहुत थे, पर जैसा कि सुवर्णभूमि नाम से सूचित होता है, वहाँ के व्यापार में लाभ भी बहुत था। शायद वहाँ सोने की खानें पाई गईं थीं। अंग देश की राजधानी चम्पा* के लोग

---

* भागलपुर नगर का पच्छिमी अंश अब भी चम्पा कहलाता है।

सुवर्णभूमि के व्यापार में सब से आगे थे ।

अन्दाज़न आठवीं शताब्दी ईसा-पूर्व की बात है। मिथिला में तब भी जनकों का राज्य जारी था। राजा महा-जनक के दो बेटे थे। बड़े बेटे अरिष्टजनक को उसने युवराज बनाया, छोटे पोलजनक को मुख्य सेनापति। महाजनक की मृत्यु पर अरिष्ट राजा बना; उसने पोल को युवराज बनाया। बुरे लोगों ने अरिष्टजनक के कान भरे कि उसका भाई उसे मार कर राज लेना चाहता है। बात झूठी थी, पर अरिष्ट ने अपने भाई को कैद में डाल दिया। कुछ काल बाद पोलजनक कैद से छुट कर सीमाप्रदेश चला गया। फिर उसने मिथिला पर चढ़ाई की। अरिष्ट युद्ध में मारा गया।

उसकी रानी के तब ५-६ मास का गर्भ था। उसने एक पिटारी में सोना और रत्न भरे, उसे मैले चिकने कपड़े से ढका, ऊपर कुछ चावल के दाने डाले, फिर अपने देह को बदरंग बना, मैले कपड़े पहन, पिटारी सिर पर रख कर निकल पड़ी। शहर में पूछती गई कि कालचम्पा की सवारी कहाँ मिलेगी। अन्त में चम्पा जाने वाले एक रथ में सवार हो वह चल दी।

मिथिला से चम्पा का रास्ता ६० योजन का था। चम्पा पहुँच रानी ने एक शाला में डेरा डाला। वहाँ उसे एक विद्वान् 'उदीच्य' (पंजाब की तरफ़ का) ब्राह्मण मिला। उसका हाल जान वह उसे अपने घर लिवा ले गया और अपनी बहन की तरह रक्खा। रानी के बच्चा होने पर उसका नाम दादा के नाम पर महाजनक रक्खा गया।

बचपन में महाजनक जब ब्राह्मण परिवार के बच्चों के साथ खेलता और वे आपस में उसकी चर्चा करते तो उसे विधवा का बेटा कहते। महाजनक ने अपनी माँ से पूछा, मुझे सब लड़के विधवा का बेटा क्यों कहते हैं। तब माँ ने उसे अपनी सारी कहानी बता दी।

सोलह बरस का होने पर महाजनक ने माँ से पूछा—माँ, मैं मिथिला जीतूँगा, तुम्हारे पास कुछ धन भी है? माँ ने कहा—धन तो मैं काफी लाई हूँ बेटा, यह देख मेरे पास सोना मोती मणियाँ और हीरे हैं। महाजनक बोला—मैं इस धन में से आधा लूँगा, उससे माल ले कर सुवर्णभूमि जाऊँगा, वहाँ से और धन कमा ला कर मिथिला जीतूँगा। माँ बोली—बेटा, सुवर्णभूमि मत जा, समुद्र में बड़े खतरे हैं, मेरा धन मिथिला जीतने को काफ़ी है, इसी

से मिथिला जीत। पर महाजनक ने आग्रह किया कि मैं सुवर्णभूमि जाऊँगा ही। माँ ने उसे आधा धन दे दिया जिससे माल खरीद कर उसने जहाज में लदवाया। उस जहाज में ३५० और यात्री भी जा रहे थे।

बंगाल की खाड़ी संसार के सब से तूफानी समुद्रों में से है। उसमें हांगोर* जैसी खूंख्वार मछलियाँ भी भरपूर हैं। वह जहाज समुद्र के बीच टूट गया। उसके बिखरे पटड़ों के बीच मछलियों के खाये हुए यात्रियों के अंग लहू से लाल हुए पानी में छितरा गये। महाजनक ने पहले जहाज के 'कूपक' (मस्तूल) को थामे रक्खा, फिर वह अपनी बाँहों से तैरने लगा। सात दिन तक वह उसी तरह खारे पानी में तैरता रहा। उसके बाद, कहते हैं, अन्तरिक्ष में एक सुन्दर जगमगाती देवी उसके सामने प्रकट हुई।

उस युग के भारतीयों का विश्वास था कि प्रकृति के प्रत्येक बड़े रूप का अधिष्ठाता कोई न कोई देवी-देवता है। उस विश्वास के अनुसार वे मानते थे कि चारों लोकपालों

---

* मनुष्य के कद की आदमखोर मछली जिसे अंग्रेजी में शार्क कहते हैं। हांगोर उसका बँगला नाम है।

ने समुद्र की रक्षा के लिए देवकन्या मणिमेखला को नियुक्त कर रक्खा था। वह मणिमेखला सात दिन के लिए देवताओं की सभा में गई हुई थी, पर जब उसने देखा कि एक सदाचारी धर्मात्मा के डूबने का खतरा है, तब प्रकट हो कर उससे पूछा—यह कौन है जो समुद्र के बीच जहाँ तीर का कुछ पता नहीं है, हाथ मार रहा है? क्या अर्थ जान कर किसका भरोसा कर के तू इस प्रकार 'व्यायाम' (उद्यम) कर रहा है?

महाजनक ने उत्तर दिया—देवी, मैं यह जानता हूँ कि लोक में जब तक बने मुझे व्यायाम करना चाहिए। इसी से समुद्र के बीच तीर को न देखता हुआ भी उद्यम कर रहा हूँ।

मणिमेखला बोली—इस गम्भीर अथाह में जिसका तीर नहीं दीख पड़ता, तेरा 'पुरुषव्यायाम' (पुरुषार्थ) निरर्थक है, तू तट को पहुँचे विना ही मर जायगा!

"क्यों तू ऐसा कहती है? व्यायाम करता हुआ मरूँगा भी तो गर्हा से तो बचूँगा। जो 'पुरुषकृत्य' (पुरुष की तरह उद्यम) करता है वह ज्ञातियों देवों और पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है, और उसे पछतावा नहीं

होता (कि मैंने प्रयत्न में कोई कसर छोड़ी) ।"

"किन्तु जिस काम के पार नहीं लगा जा सकता, जिसका कोई फल दिखाई नहीं देता, वहाँ व्यायाम से क्या लाभ—जहाँ मृत्यु का आना निश्चित ही है ?"

"जो यह जान कर कि मैं पार न पाऊँगा उद्यम नहीं करता, यदि उसकी हानि हो तो देवी उसी के दुर्बल प्राणों का दोष है। मनुष्य अपने अभिप्राय के अनुसार देवी इस लोक में अपने कार्यों का आयोजन और यत्न करते हैं, सफलता हो या न हो। कर्म का फल निश्चित है देवी, क्या तू यहीं यह नहीं देख रही ? मेरे साथी सब डूब गये और मैं तैर रहा हूँ और तुझे अपने पास देख रहा हूँ। सो मैं व्यायाम करूँगा ही, जब तक मुझमें शक्ति है जब तक मुझमें बल है समुद्र के पार जाने को 'पुरुषकार' करता रहूँगा।"

कहानी है कि इन गाथाओं को सुनते सुनते मणि-मेखला ने अपनी बाहें फैला दीं और महाजनक को बच्चे की तरह छाती पर लगा कर मिथिला पहुँचा दिया, जहाँ पोलजनक अपने पीछे किसी पुत्र को छोड़े बिना मर चुका था। लोगों ने महाजनक को गद्दी पर बिठाया और

उसने अपनी माँ को मिथिला वापिस बुलाया। हमारे विचार में महाजनक और उसकी माँ का मिथिला वापिस पहुँचना इतनी सरलता से नहीं हुआ था। उन्होंने बंगाल की खाड़ी जैसी और भी अनेक कठिनाइयों को अपनी हिम्मत से पार किया होगा। जो भी हो, महाजनक और मणिमेखला के संवाद में कवि ने जो भाव प्रकट किये हैं उनमें सुवर्णभूमि जाने वाले उस युग के हज़ारों भारतीयों के मन के भावों की झलक है।

---

२. चण्ड प्रद्योत और उदयन

भारत युद्ध के कुछ काल बाद कुरु देश में लाल टिड्डियों के लगातार फसलों को नष्ट करने से लम्बा दुर्भिक्ष पड़ा। तभी गंगा की बाढ़ हस्तिनापुर को बहा ले गई। उस दशा में कुरु लोग बड़ी संख्या में अपने राजा के साथ वहाँ से उठ कर कौशाम्बी में जा बसे। कौशाम्बी प्रयाग के ३२ मील ऊपर जमना किनारे का कोसम गाँव है। उसके चौगिर्द का प्रदेश वत्स कहलाता था। यों वत्स देश में भारत वंश स्थापित हो गया।

ईसा पूर्व की आठवीं-सातवीं शताब्दियों में भारत में सोलह महाजनपद थे। उन बड़े जनपदों में से कुछ एकराज्य थे अर्थात् उनमें एक एक पुरुष का वंशागत राज्य था, और कुछ संघराज्य थे अर्थात् उनमें संघ या समूह का

राज्य था। छठी शताब्दी ई० पू० में उन एकराज्यों में से मगध, कोशल, वत्स, अवन्ति और गन्धार ये पाँच सब से बड़े थे। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी (=उज्जैन) थी। मालवा और राजस्थान का बड़ा भाग अवन्ति के अन्तर्गत था। अवन्ति और वत्स के बीच पहले चेदि (=बुन्देलखंड) राज्य था। पर अब वह मिट चुका था, इसलिए अवन्ति और वत्स की सीमाएँ लगती थीं।

अवन्ति का राजा प्रद्योत चण्ड (डरावना) प्रद्योत कहलाता था। उत्तर तरफ उसने मथुरा तक का प्रदेश जीत लिया था। पूरब तरफ उसकी मगध से होड़ लगी थी, इसलिए वह बीच के वत्स राज्य को जीतना चाहता था।

वत्स का राजा उदयन वीर और सुन्दर जवान था। कहते हैं उसे 'हस्तिकान्त शिल्प' अर्थात् हाथियों को मोह लेने की कला आती थी। वह एक मन्त्र का प्रयोग कर और हस्तिकान्त वीणा बजा कर हाथियों को पकड़ लेता था।

चण्ड प्रद्योत ने अपने अमात्यों से सलाह कर षड्यन्त्र रचा, और दोनों देशों की सीमा पर जंगल में

एक काठ का हाथी, जिसपर चीथड़े लपेट कर रंग किया हुआ था, छोड़वा दिया। खबर पा कर उदयन उसे पकड़ने पहुँचा। उसने मन्त्र चलाया, वीणा बजाई, पर हाथी उलटी तरफ दौड़ने लगा। घोड़े पर चढ़े उदयन ने उसका पीछा किया, उसके साथी पीछे रह गये, तब हाथी के और जंगल के अन्दर छिपे प्रद्योत के सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। प्रद्योत ने उसे 'चोर-गेह' में बन्द करवाया और तीन दिन बड़ी खुशियाँ मनाईं।

उदयन ने 'आरक्षकों' से पूछा—तुम्हारा राजा कहाँ है?

उन्होंने कहा—शत्रु पकड़ा गया है इसलिए हमारा राजा 'जय-पान' पीता है।

"क्या यह स्त्रियों की सी बात तुम्हारा राजा करता है! शत्रु राजा को पकड़ा है तो उसे छोड़ना चाहिए या मारना चाहिए।"

आरक्षकों ने वह बात अपने राजा तक पहुँचाई। प्रद्योत ने आ कर उदयन से कहा—बात तो तुम ठीक कहते हो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, पर तुम्हें जो हाथी पकड़ने का मन्त्र आता है वह मुझे सिखा दो।

"सिखा दूँगा, पर क्या तुम मुझे (गुरु के रूप में) अभिवादन करोगे?"

"क्या! मैं तुम्हें अभिवादन करूँगा? कभी न करूँगा!"

"तब मैं भी न सिखाऊँगा।"

"तब तो अवश्य तुम्हें (छोड़ कर तुम्हारा) राज्य दे दूँगा!" प्रद्योत ने चिढ़ाते हुए कहा।

"जो जी में आय करो, मेरे देह के तुम प्रभु हो, चित्त के तो नहीं।"

प्रद्योत ने देखा यों तो उदयन मानेगा नहीं। उसे एक जुगत सूझी। उसने उदयन से पूछा—दूसरा कोई तुम्हें अभिवादन करे तो उसे सिखा दोगे? उदयन के हाँ करने पर उसने कहा—हमारे घर की एक कुबड़ी तुमसे सीखेगी, वह पर्दे के भीतर बैठा करेगी, तुम बाहर बैठ कर सिखाना। उधर प्रद्योत ने अपनी बेटी वासवदत्ता से कहा—एक कोढ़ी एक अनमोल मन्त्र जानता है, तुम्हीं उससे सीख सकती हो, तुम पर्दे के भीतर बैठा करना, वह बाहर से सिखाया करेगा।

यों वासवदत्ता मन्त्र सीखने लगी। किन्तु वह पाठ

ठीक न दोहराती। एक दिन उदयन क्रोध से चीख उठा—
ऐसे बोल कुबड़ी, बड़े मोटे तेरे होंठ और जबड़े हैं !

"क्या बकता है रे दुष्ट कोढ़ी ! मेरे ऐसी कुबड़ी होती हैं !" वासवदत्ता ने कहा ।

उदयन ने पर्दे का किनारा हटा कर देखा और सब भेद खुल गया ! उसके बाद वासवदत्ता उसे बाहर न बिठाती और वह भी उसे प्रेम से सिखाता। राजा नित्य बेटी से पूछता, शिल्प सीख रही है न ? वह कहती, हाँ सीख रही हूँ । कुछ दिन बाद बेटी ने कहा, मैंने शिल्प सीख लिया है, अब मुझे अभ्यास करना है। शिल्प का अभ्यास करने के लिए उसे एक हथिनी दी गई। कुछ दिन बाद वह उसी हथिनी पर उदयन को चढ़ा कर उज्जयिनी से भाग निकली ! आगे आगे वासवदत्ता हथिनी को हाँकती जाती थी, उसके पीछे उदयन था, और उसके पीछे उदयन का एक विश्वस्त साथी (जिसे वासवदत्ता ने पहले ही बुलवा लिया था) निष्कों (सोने के सिक्कों) की थैली लिये बैठा था। जो आरक्षक रास्ते में टोकते उन्हें वह निष्कों की मुट्ठी दे कर चुप करा देता । सीमा पर उदयन के सैनिक स्वागत को तैयार थे ।

जो हुआ, प्रद्योत के लिए अच्छा ही हुआ। उसका दामाद बनने के बाद उदयन उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को तृप्त करने में सहायक हुआ।*

---

* धम्मपदत्थकथा की वासुलदत्ताय वत्थु के आधार पर। यही कथा थोड़े अन्तर से भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भी है।

३. बुद्ध और महावीर

कोशल क्षत्रियों की एक शाखा उत्तर जा कर हिमालय-तराई में अचिरावती (राप्ती) और रोहिणी नदियों के बीच जा बसी थी। वे शाक्य कहलाते और उनका छोटा सा संघराज्य था जिसकी राजधानी कपिलवास्तु थी। शुद्धोदन शाक्य कुछ वर्षों के लिए उसका राजा चुना गया था। शुद्धोदन का विवाह दो शाक्य कन्याओं--माया और प्रजावती—से हुआ था।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद माया को पुत्र होने की आशा हुई और दोनों बहनें मायके रवाना हुईं। कुछ दूर जा कर लुम्बिनी के वन में माया ने पुत्र को जन्म दिया और सात दिन बाद उसे प्रजावती के हाथ सौंप परलोक सिधार गईं। उस बालक का नाम सिद्धार्थ गौतम रक्खा गया।

सिद्धार्थ बचपन से ही चिन्ताशील था। उसका वैसा स्वभाव देख पिता ने १८ वर्ष की आयु में ही उसका विवाह कर दिया। पर विवाह से भी उसमें कोई फरक न पड़ा। छोटी-छोटी बातें उसके दिल पर असर कर जातीं। एक दिन वह रथ में सैर कर रहा था कि एक बूढ़े को कमर झुकाये देखा। पूछा, इसकी यह दशा क्यों है? उत्तर मिला बुढ़ापे के कारण। बुढ़ापा क्या होता है? क्या वह इसी आदमी को सताता है या सब को? ऐसे ऐसे प्रश्न उसके मन में उठे। इसी तरह एक रोगी को और एक लाश को देख कर उसने विचार किया। अन्त में एक शान्त प्रसन्नमुख संन्यासी को देख कर उसने भी वैसा ही बनने का संकल्प कर लिया।

सिद्धार्थ लम्बे डील का था। उसका रंग गोरा, छाती चौड़ी, आँखें नीली, केश घुँघराले, कान लटकते हुए और बाँहें लम्बी थीं। हाथों की अँगुलियाँ घुटनों तक पहुँचती थीं।

तब वह अट्ठाइस बरस का था। नदी किनारे बगीचे में बैठे उसे अपना पुत्र होने की खबर मिली। सब तरफ उत्सव मनाये जाने लगे। पर सिद्धार्थ के मन में कुछ और ही समा चुका था। उसी धुन को लिये वह उस रात

अन्तिम बार अपनी स्त्री के पास गया। दीये के उजाले में उसने उसे सोते देखा। उसका एक हाथ बच्चे के सिर पर था। जी में आया एक बार बच्चे को गोदी ले लूँ। पर दिल को कड़ा कर वह उसी रात गृहस्थ जीवन को छोड़ संन्यास के लिए निकल पड़ा।

शाक्य देश के दक्खिनपूरब आजकल के गोरखपुर देवरिया ज़िलों में मल्लों का संघराज्य था। उसके पूरब पुराने विदेह या मिथिला में अब वृजियों का संघ था जिसकी राजधानी वैशाली* थी। मिथिला के राजा कराल जनक ने प्रजा की एक लड़की पर जबरदस्ती करनी चाही थी। तब वहाँ की सारी प्रजा उठ खड़ी हुई और उसने जनक राजवंश को मिटा कर संघराज्य स्थापित किया था। उस संघ के दो अंश थे—विदेह और लिच्छवि। दोनों मिला कर वृजिसंघ कहलाता था। मल्लों का संघ और वृजियों का संघ दोनों शक्तिशाली थे, इसलिए उनकी महाजनपदों में गिनती थी।

मल्लों के देश को लाँघ कर सिद्धार्थ वैशाली पहुँचा

---

*वैशाली के खँडहर मुज़फ्फरपुर ज़िले के बसाढ़ गाँव में हैं।

नक्शा—४ भारतवर्ष महाजनपद युग में
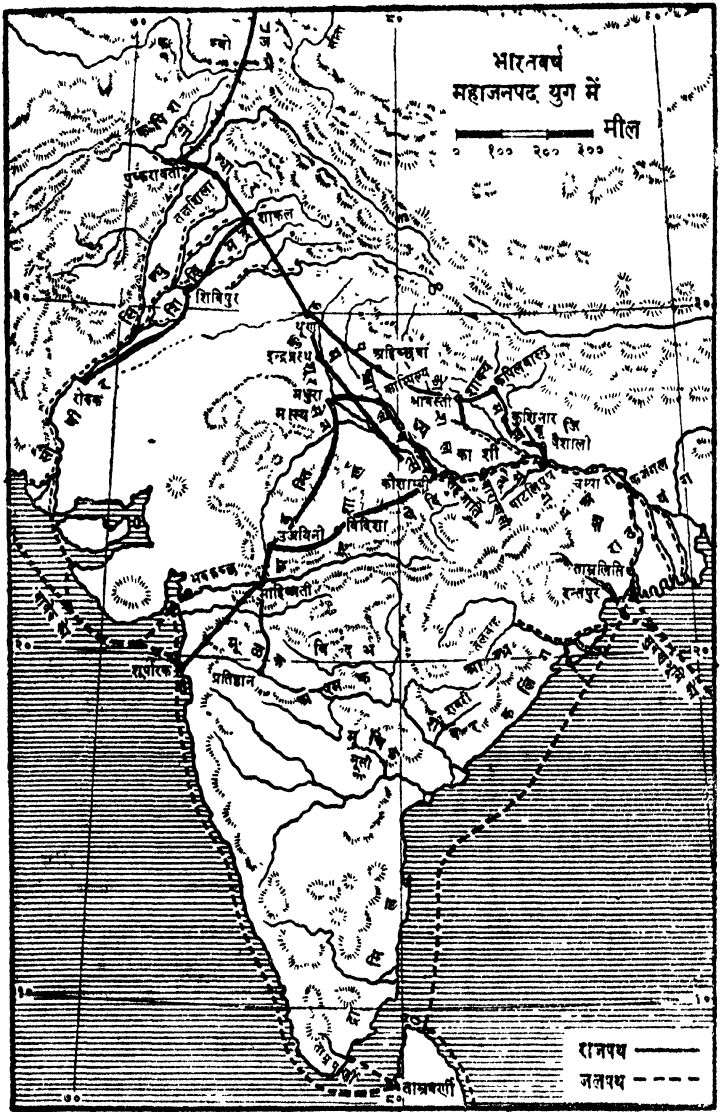
और कुछ समय वहाँ रहने के बाद गंगा पार कर मगध की राजधानी राजगृह† गया। वैशाली और राजगृह में उसने दो बड़े विद्वानों से उस समय की सब दर्शन-विद्या पढ़ी। पर उस सूखे दिमागी व्यायाम में उसे वह शान्ति न मिली जिसे वह अपने और संसार के लिए ढूँढता था।

तब उसने एक और कठिन रास्ता पकड़ा। अपने आश्रम के पाँच विद्यार्थियों को साथी बना वह गया के पहाड़ी जंगल में तप करने गया। वहाँ निरंजना नदी के किनारे छः बरस तप करते करते उसका शरीर सूख कर हाड़-चाम बाकी रह गया। कहानी है कि एक बार कुछ स्त्रियाँ नाचती-गातीं उस जंगल के रास्ते से गुजरीं। वे गाती थीं—वीणा के तार को ढीला न छोड़ो, नहीं तो वह बजेगा नहीं, और उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट ही जाय! वह गीत गौतम के कान में पड़ा और उससे उसे बड़ी शिक्षा मिली। उसने देखा मैं अपने जीवन के तार को बहुत कसे जा रहा हूँ। तब से वह अपने देह की सुध लेने

---

† पटने के दक्खिन पहाड़ों से घिरी सुन्दर बस्ती जहाँ गर्म पानी के झरने हैं।

लगा। उसके साथी उसे तप से डरा मान साथ छोड़ बनारस चले गये। गौतम अकेला ग्रामीण स्त्रियों से भिक्षा पा कर धीरे धीरे स्वस्थ होने लगा। उन स्त्रियों में सुजाता नाम की एक किसान युवती थी जिसने गौतम को बड़ी श्रद्धा से खीर खिलाई।

स्वस्थ होने के बाद गौतम एक दिन एक पीपल के तले बैठा विचार करता था। ध्यान लगाते ही 'मार' ने उसपर आक्रमण किया। मार यानी मनुष्य के अपने मन के विकार या वासनाएँ। गौतम ने 'मार' को शीघ्र जीत लिया अर्थात् चित्त के विकार शान्त कर लिये। तब उसे वह 'बोध' हुआ जिसके लिए वह भटकता फिरता था। उस दिन से गौतम 'बुद्ध' हुआ, और वह पीपल भी बोधि-वृक्ष कहलाया। गौतम की बोधि या बूझ क्या थी? वह केवल यह थी कि सरल सच्चा जीवन धर्म का सार है, वह सब यज्ञों शास्त्रार्थों और तपों से बढ़ कर है।

बुद्ध अपनी बूझ से स्वयं सन्तुष्ट हो कर बैठ नहीं गये। बनारस पहुँच कर जहाँ आजकल सारनाथ की बस्ती है वहाँ वे अपने पुराने साथियों से मिले और उन्हें समझाया—"भिक्खुओ, संन्यासी को दो 'अन्तों'

(सीमाओं, किनारों) का सेवन नहीं करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं? एक तो काम और विषय-सुख में फँसना ... और दूसरा शरीर को व्यर्थ कष्ट देना ...। इन दोनों अन्तों को छोड़ कर 'तथागत' (ठीक समझ वाले बुद्ध) ने मध्यम मार्ग को पकड़ा है जो आँख खोलने वाला और ज्ञान देने वाला है।" यह मध्यम मार्ग ही बुद्ध की शिक्षा का निचोड़ है।

बुद्ध का यह पहला उपदेश 'धर्मचक्र-प्रवर्त्तन' यानी धर्म के पहिये को चलाना कहलाता है। धीरे धीरे उनके साठ भिक्खु चेले हो गये। तब उन्होंने उनका एक 'संघ' बना दिया, क्योंकि बुद्ध को संघ-शासन बहुत पसन्द था। बौद्ध धर्म में किसी एक की महन्ती न थी, संघ के बहुमत से ही सब कुछ किया जाता था। इसके बाद बुद्ध ने कहा—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, जनता के हित के लिए घूमो। कोई भी दो भिक्खु एक तरफ़ न जाओ।"

बुद्ध स्वयं भी भ्रमण को निकले और चालीस बरस उत्तर भारत के जनपदों में उपदेश देते घूमते रहे। अस्सी बरस की आयु में मल्लों की नगरी कुशिनगर† में उन्होंने

† देवरिया ज़िले के कसिया गाँव में उसके खँडहर हैं।

अपने शिष्यों को बुला कर कहा—"मैं तुम्हें अन्तिम बार बुलाता हूँ। संसार की सब सत्ताओं की अपनी अपनी आयु है। प्रमाद (ढील) किये बिना काम करते जाओ। यही बुद्ध की अन्तिम वाणी है।" ऐसा कहते हुए उन्होंने आँखें मूँद लीं और उनका निर्वाण हुआ अर्थात् जीवन-दीपक बुझ गया। यह बात ईसवी सन् शुरू होने से ५४४ बरस पहले अर्थात् आज से लगभग २½ हज़ार बरस पहले की है।

गौतम बुद्ध के समकालिक वर्धमान महावीर हुए। वे वृजि-संघ के ज्ञात्रिक कुल के 'राजा' सिद्धार्थ और उसकी रानी त्रिशला के पुत्र थे और वैशाली के पास कुण्डग्राम में पैदा हुए थे। उत्तरी बिहार में आजकल जो जैथरिया लोग हैं, वे शायद उन्हीं ज्ञात्रिकों के वंशज हैं। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थंकर पार्श्व नामक धर्म-सुधारक के, जो दो शताब्दी पहले बनारस में हुए थे, अनुयायी थे। वर्धमान भी बचपन में पार्श्व का अनुयायी रहा। बड़े होने पर वर्धमान का यशोदा नाम की देवी से विवाह हुआ जिससे एक लड़की हुई। माता-पिता की मृत्यु के बाद तीस बरस की आयु में वर्धमान ने घर छोड़ा। बारह बरस के श्रमण

और तप के बाद उन्हें 'कैवल्य' (ज्ञान) प्राप्त हुआ। तब से वे अर्हत् (=पूज्य) जिन (=विजेता) और महावीर कहलाये। उनके अनुयायी अब जैन कहलाते हैं।

महावीर जिन की शिक्षा में अहिंसा और संयम मुख्य बातें थीं। अर्हत् होने के बाद वे लगातार मिथिला कोशल आदि जनपदों में भ्रमण करते और उपदेश देते रहे। बुद्ध-निर्वाण के एक बरस पहले उनका निर्वाण हुआ।

बुद्ध और महावीर ये दोनों समकालिक सुधारक उत्तर भारत के दो संघ-राज्यों में हुए, यह ध्यान देने की बात है।

———

४. सेनापति की स्त्री

कोशल की राजधानी इस युग में अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे श्रावस्ती* थी। बुद्ध के समय वहाँ का राजा प्रसेनजित् था। कोशल के पूरब लगा हुआ मल्लों का संघ-राज्य था और उसके पूरब वृजि-संघ।

वृजियों की राजधानी वैशाली बड़ी समृद्ध नगरी थी। उसके चारों तरफ तिहरा परकोटा था जिसमें स्थान स्थान पर बड़े बड़े द्वार और गोपुर (पहरा देने के मीनार) बने थे। वृजियों के प्रत्येक गाँव का सरदार राजा कहलाता था। कहते हैं उनके ७७०७ राजा थे, जो सब एक परिषद् में इकट्ठे हो अपने सामूहिक कार्यों का चिन्तन करते थे।

---

* गोंडा बहराइच जिलों की सीमा पर सहेठ महेठ गाँवों में उसके खँडहर हैं।

शासन चलाने के लिए उनमें से ४ या ९ 'गणराजा' चुन लिये जाते थे।

वृजियों का अपनी उस परिषद् में बर्त्ताव इतना शिष्ट और शानदार होता कि भगवान् बुद्ध ने एक बार अपने शिष्यों से कहा था, तुममें से जिन्होंने देवताओं की परिषद् न देखी हो वे वृजियों की इस परिषद् को देखें! वे लोग वीर और स्वतंत्रता-हठी थे। कोशल और मगध के राजा उनकी समृद्धि से जलते और उन्हें जीत लेना चाहते, पर वृजियों की वीरता सजगपन और सामूहिक एकता के सामने उनकी दाल न गलती।

कहते हैं वैशाली के ७७०७ राजाओं में से प्रत्येक का अपनी रानी के साथ अभिषेक होता था। उस अभिषेक के लिए एक पोखरनी बनी थी, जिसपर कड़ा पहरा रहता और ऊपर भी लोहे की जाली लगी रहती जिससे उड़ते पक्षी भी उसमें चोंच न डुबो सकें। वृजि राजा और रानी अभिषेक के समय उसमें स्नान करते, अन्यथा कोई उसमें घुस न सकता था।

राजा प्रसेनजित् का सेनापति बन्धुल मल्ल था। बन्धुल की स्त्री मल्लिका के बहुत दिन तक कोई सन्तान नहीं हुई।

बन्धुल ने उससे कहा, तू मायके चली जा। सो वह कुशि-नगर जाने को तैयार हुई। भगवान् बुद्ध उस समय श्रावस्ती के जेतवन विहार में ठहरे हुए थे। मल्लिका उनके दर्शन करने गई और कहा कि मैं मायके जा रही हूँ। बुद्ध ने कहा—कुशिनगर जाने की आवश्यकता नहीं, पति के पास चली जाओ, तुम्हारे बहुत सन्तान होगी। कुछ ही दिन बाद मल्लिका के गर्भ रह गया और दोहद प्रकट होने लगे। उसने पति से कहा—मेरे दोहद होने लगे हैं। क्या दोहद है, बन्धुल मल्ल ने पूछा।

"वैशाली नगरी में लिच्छवि राजाओं की जो अभिषेक-मंगल-पोखरनी है उसके अन्दर नहा कर पानी पीने को जी करता है।"

मल्लिका को दोहद गज़ब का था! जान पड़ता है कोशल के दरबार में वृजिसंघ पर चढ़ाई करने की जो चर्चा चलती थी उसके मन में वही समा गई थी। उस इच्छा को पूरा करना मौत से खेलना था, पर बन्धुल अपनी पत्नी की बात कैसे टालता? उसने रथ पर सवार हो सेना के साथ कूच किया।

महालि नामक लिच्छवि बन्धुल के साथ एक ही

गुरुकुल में पढ़ा था। वह अब बूढ़ा और प्रज्ञाचक्षु हो कर वृजियों का 'अर्थधर्मानुशासक' (राजनीतिक पथदर्शक) था और वैशाली के बाहरी द्वार पर रहता था। उसने बन्धुल के रथ-वाहनों का शब्द सुना और अनिष्ट की आशंका की।

बन्धुल ने पोखरनी पर पहुँच कर पहरेदारों को काट डाला, जाली को छेद कर मल्लिका के साथ स्नान किया और जी भर पानी पिया। वे लौट रहे थे कि ५०० वृजियों ने उनका पीछा किया। बन्धुल ने अपने रथ की रासें मल्लिका को थमा दीं और स्वयं धनुष ले कर लड़ना शुरू किया। बाणों की बौछार के बीच मल्लिका ने तेज़ी से रथ दौड़ाया और पति के साथ सकुशल घर पहुँच गई।

उस बार मल्लिका के जोड़ा बेटे हुए। उसके बाद फिर १५ जोड़े और पैदा हुए। सभी राज्य में बड़े बड़े पदों पर पहुँच गये। यों राज्य में बन्धुल की बड़ी शक्ति हो गई। कोशल राज्य की प्रजा भी उससे बहुत खुश थी। पर छोटे दिल के लोग उससे डाह करने लगे।

एक बार कुछ लोग जो न्यायालय में अपना सच्चा मुक़द्दमा हार गये थे, रोते हुए बन्धुल के पास आये। बन्धुल ने न्यायालय में जा कर सब ठीक-ठीक कर दिया।

इससे पुराने न्यायाधीशों को घूस मिलना बन्द हो गया, और वे बन्धुल के विरुद्ध बिगड़ उठे। वे और उनके साथी राजा के कान भरने लगे। राजा भी उनकी बातों में बहक गया।

कोशल के सीमान्त पर उस समय एक बलवा हुआ। राजा ने बन्धुल को उसके दमन के लिए भेजा, इस विचार से कि शायद वह वहीं मारा जाय। लेकिन बन्धुल ने बलवा शान्त कर दिया। वह श्रावस्ती वापिस आता था कि राजा ने षड्यंत्र कर उसे मरवा डाला और उसके भानजे दीर्घ कारायण को सेनापति बनाया। बन्धुल के बत्तीसों बेटे भी उसी दिन कत्ल किये गये।

मल्लिका ने भिक्षुसंघ को अपने घर न्योत रक्खा था। सबेरे के समय उसे चिट्ठी मिली जिसमें स्वामी और बेटों के मरने की खबर थी। अपने सर्वनाश का समाचार पा कर भी उसने किसी से कुछ नहीं कहा सुना। चिट्ठी को अंटी में बाँध लिया और उसी तरह मानो कुछ हुआ ही न हो भिक्षुसंघ के सत्कार में लगी रही। उसकी एक परिचारिका से परोसते समय घी की चाटी गिर कर फूट गई। बुद्ध का प्रमुख शिष्य सारिपुत्र वहाँ उपस्थित था। उसने कहा,

मल्लिका, फूटने वाली चीज़ फूट गई, उसकी चिन्ता मत करो। मल्लिका ने अंटी में से पत्र निकाल कर कहा, मेरे ३२ बेटों का पिता के साथ सिर कट गया है यह सुन कर भी चिन्ता नहीं करती तो क्या घी की एक चाटी के लिए चिन्तित होऊँगी?

मल्लिका अपने मन में बदला लेने का इरादा बाँध रही थी। सारिपुत्र ने उसे शान्ति का उपदेश दिया। राजा भी पीछे अपनी करनी पर बहुत पछताया। तब मल्लिका ने उसे क्षमा कर दिया और अपनी बत्तीसों बहुओं को बुला कर उन्हें भी ढाढ़स बँधाया और शान्त होने का उपदेश दिया। उन सब को साथ ले कर वह कुशिनगर में अपने पिता के घर चली गई।

---

५. सिंहल राज्य की स्थापना

दक्खिनी भारत में आर्यों के उपनिवेश जब धीरे धीरे आगे बढ़ रहे थे तब भारत के नाविक और व्यापारी नर्मदा मुहाने के भरुकच्छ (भरुच) बन्दरगाह से समुद्रतट के साथ साथ सिंहल द्वीप होते हुए सुवर्णभूमि तक यात्राएँ करते थे। सिंहल तब तक आबाद न हुआ था। उसका नाम ताम्रपर्णी द्वीप था।

दूर के नये देशों के विषय में कहानियाँ बन जाया करती हैं। ताम्रपर्णी के विषय में तब यह कहानी प्रसिद्ध थी कि वहाँ शिरीषवास्तु नाम का यक्षों का नगर है। जो 'वि-प्रणष्ट' (जिनका जहाज भटक या टूट गया हो ऐसे) यात्री उस द्वीप के तट पर जा लगें उन्हें वहाँ की यक्षिणियाँ ललचा कर उस नगर में ले जातीं, प्रकट में उन पुरुषों

की स्त्रियाँ बन कर रहतीं, किन्तु उन्हें सुला और मकानों में बन्द कर नये पुरुषों की तलाश में निकलतीं और जब उन्हें नये पुरुष मिल जाते तब पहले पुरुषों को 'कारणघरों' (यातना-गृहों) में डाल कर धीरे-धीरे खा जातीं! पर ऐसी यक्षिणियों की प्रसिद्धि के बावजूद भी भारत के प्रवासी ताम्रपर्णी जाते ही रहे।

६२५ ई० पू० के लगभग की बात है। कलिंग देश (उड़ीसा समुद्रतट) की एक राजकुमारी वंग (पूरबी बंगाल) के राजा को व्याही। उनके एक कन्या हुई जो "अत्यन्त रूपिणी और अत्यन्त कमनीय" थी। वह बड़ी बेधड़क भी थी। युवती होने पर उसे महलों का जीवन पसन्द न आया। वह स्वैरचार (मनमाने घूमने) के लिए घर से निकल भागी और मगध जाने वाले एक सार्थ (काफ़िले) के साथ हो ली। रास्ते में राढ देश (पच्छिमी बंगाल) के एक जंगल में एक "सिंह" ने उस सार्थ को तोड़ दिया। सब लोग जहाँ-तहाँ भाग गये, वह राजकुमारी सिंह के साथ चल दी। उस युवती से उस सिंह के सिंहबाहु नाम का पुत्र और सिंहवल्ली नाम की कन्या हुई। प्रकट है कि सिंह कोई डाकू सरदार था।

सिंहबाहु ने बड़े होने पर सिंहपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसका बेटा विजय बड़ा उच्छृंखल था और प्रजा को सताता था। राजा ने प्रजा के कहने से उसे उसके दुष्ट साथियों सहित नावों में बैठा कर देश-निकाला दे दिया। वे लोग भटकते हुए सुपारक (=कोंकण के ठाणा ज़िले में आधुनिक सोपारा) पहुँचे। वहाँ की जनता ने उनका स्वागत किया; पीछे उनके बर्त्ताव से ऊब कर उन्हें निकाल दिया। वे तब ताम्रपर्णी पहुँचे जहाँ तब यक्षों का राज्य था। विजय और उसके साथियों ने उसे जीत लिया। विजय ने यक्ष राजपुत्री कुवर्णा या कुवेणी से विवाह किया। पीछे उसे त्याग कर पाण्ड्य राजा की कन्या को ब्याहा।

कन्या-कुमारी अन्तरीप के ठीक उत्तर के दो ज़िले—मदुरा और तिरुनेलवेली—मिला कर प्राचीन काल में पाण्ड्य देश कहलाता था। मथुरा या मधुरा से आने वाले पाण्डु लोगों ने उसे बसाया था, इसी से उसका नाम पाण्ड्य पड़ा था। उसकी राजधानी का नाम भी उन्होंने मधुरा रक्खा था। वही अब मदुरा कहलाती है।

विजय सिंहबाहु का बेटा था, सिंहपुर से आया था,

इसलिए ताम्रपर्णी का नाम तब से सिंहल पड़ा। विजय ने वहाँ ताम्रपर्णी नगरी बसाई और ३८ बरस धर्म से राज्य किया। उसके साथियों ने अनुराधपुर, उरुवेला, उज्जयिनी आदि नगरियाँ बसाईं।

विजय और उसके साथियों का सिंहल में आना प्रायः तभी हुआ जब भारत में भगवान् बुद्ध का निर्वाण हुआ।

———

६. जीवक कुमारभृत्य

बुद्ध के समय में मगध की राजधानी राजगृह में सालवती नाम की गणिका थी। उसके एक बच्चा हुआ जिसे उसने घूर पर फेंक दिया। राजा बिम्बिसार के बेटे अभय की दृष्टि उस बच्चे पर पड़ी। उसने उसे उठा कर पाला पोसा और उसका नाम जीवक रक्खा।

बड़ा होने पर जीवक ने देखा राजमहल का पराश्रित जीवन किसी काम का नहीं है, कोई शिल्प सीख कर स्वतन्त्र जीविका करनी चाहिए। इस विचार से वह चुपचाप घर से निकल पड़ा और वैद्यक पढ़ने के लिए सुदूर तक्षशिला जा पहुँचा।

गन्धार महाजनपद की राजधानी तक्षशिला तब विद्या का बड़ा केन्द्र थी। तक्षशिला के गुरुकुल में अनेक 'दिशा-

प्रमुख' (जगत्प्रसिद्ध) आचार्य रहते, जिनके पास भारत और मध्य एशिया के जनपदों के युवक 'शिल्प ग्रहण' करने (शिक्षा पाने) आते। वहाँ "तीन वेदों और अठारह विद्यास्थानों" की शिक्षा दी जाती थी। एक एक आचार्य के पास ५-५ सौ तक विद्यार्थी शिक्षा पाते। क्या राजाओं के बेटे और क्या गरीब ब्राह्मण सभी वहाँ पढ़ने पहुँचते। कोशल के राजा प्रसेनजित् ने स्वयं तक्षशिला में शिक्षा पाई थी। तक्षशिला के गुरुकुल में शिक्षा पाये होना तब योग्य पुरुषों की पहचान थी।

जीवक प्रतिभाशाली और परिश्रमी था। उसने सात बरस खूब मन लगा कर आयुर्वेद पढ़ा। तब उसने गुरु से कहा—आचार्य, मैं सात बरस से जी लगा कर पढ़ रहा हूँ, इस विद्या का तो कहीं अन्त नहीं दिखाई देता, इसका अन्त कहाँ है ? आचार्य ने देखा जीवक घर लौटने को उत्सुक है। पर उसकी परीक्षा लिये बिना वे उसे कैसे जाने देते ? जीवक के हाथ में कुदाली देते हुए आचार्य ने कहा—जाओ, तक्षशिला के चारों तरफ एक योजन परिधि में घूम जाओ; उस परिधि में जो वनस्पति तुम्हें ऐसी दिखाई दे जिसका चिकित्सा में उपयोग तुम्हें

न आता हो तो उसे उखाड़ लाओ। जीवक बहुत दिन तक कुदाली लिये तक्षशिला के चारों तरफ घूमता रहा, पर उसे वैसा कोई पौधा नहीं मिला। उसने आ कर गुरु से वैसा कहा। गुरु ने कहा—अच्छा, तब तुम कमाने-खाने लायक हो गये हो और घर जा सकते हो। गुरु ने रास्ते का खर्चा भी उसे गुरुकुल से दिलवा दिया। तक्षशिला में जीवक ने बच्चों के रोगों और उनकी चिकित्सा का विशेष अध्ययन किया था, इसलिए उसे कुमारभृत्य की उपाधि मिली।

भारत के मध्यदेश से तक्षशिला जाने वाला रास्ता तब बड़ा सुरक्षित था। लोग हथियार बाँधे बिना उसपर जाते आते थे। जीवक कुमारभृत्य साकेत (अयोध्या) तक सकुशल पहुँच गया। पर वहाँ तक जाते उसका खर्चा चुक गया। उसने साकेत के लोगों से पूछा यहाँ कोई रोगी है। लोगों ने बताया कि 'नगरश्रेष्ठी' (नगर-सभा के प्रधान) की स्त्री बरसों से बीमार है। उसे पुराना सिर-दर्द था। अनेक वैद्य उसका रोग दूर करने का यत्न कर चुके, उससे बहुत सोना ले चुके, पर उसे ठीक न कर पाये थे। जीवक ने सन्देश भेजा कि तक्षशिला से वैद्य आया है।

नगरश्रेष्ठी की स्त्री ने उसे बुलवाया । उसे देख कर जीवक ने एक सेर घी माँगा, उस घी में कुछ ओषधियाँ पकाइं। तब श्रेष्ठी की स्त्री को नाक से वह घी दे कर मुँह से निकलवाने लगा। नगरश्रेष्ठी की पत्नी ने अपनी नौकरानी से कहा कि नाक-मुँह से निकला घी रुई से पोंछ कर रखती जाओ। जीवक ने वह देख कर कुछ मुँह बनाया। श्रेष्ठी की पत्नी ने पूछा--वैद्य, आप क्या सोच रहे हो?

जीवक ने कहा—मैं यह सोचता हूँ कि जो स्त्री इतनी कंजूस है कि नाक-मुँह से निकला घी भी सँभाल कर रखवाती है, उससे मुझे क्या लाभ होगा!

श्रेष्ठी की पत्नी ने कहा—वैद्य, हम गृहस्थों के घरों में सब चीज़ काम में लग जाती है। इस घी से दीये जलाये जा सकते हैं। पर आपका देय आपको मिलेगा इसकी चिन्ता न करें।

जीवक ने तब उसकी वह चिकित्सा जारी रक्खी। धीरे-धीरे श्रेष्ठी की पत्नी चंगी हो गई। उसने तब जीवक को चार हज़ार कार्षापण भेंट किये। उसके बेटे ने यह देखा कि मेरी माँ जो बरसों के बीमार थी चंगी हो गई तो

उसे बड़ी खुशी हुई। उसने अपनी ओर से चार हज़ार कार्षापण जीवक को भेंट दिये। उसकी बहू ने यह देखा कि मेरी सास बरसों बाद चंगी हुई तो उसने भी अपनी ओर से चार हज़ार कार्षापण जीवक को दिये। नगरश्रेष्ठी ने देखा कि मेरी स्त्री चंगी हो गई तो उसने चार हज़ार कार्षापण, दो घोड़ों सहित रथ, एक नौकर और नौकरानी जीवक को भेंट कर उसे विदा किया। कार्षापण ताँबे का सिक्का होता था जिसकी क्रयशक्ति आजकल के तीन-एक रुपये के बराबर थी।

जीवक कुमारभृत्य साकेत से रथ में बैठ मगध के लिए रवाना हुआ। राजगृह पहुँचने पर वह मगध का राजवैद्य नियत किया गया। उसके चिकित्सा के चमत्कारों की ख्याति शीघ्र ही दूर दूर तक फैल गई।

कहते हैं एक बार राजगृह का नगर-श्रेष्ठी बहुत बीमार था। उसके सिर में कोई गन्दा फोड़ा था और वैद्यों ने जब यह कह दिया कि वह पाँच दिन या तीन दिन से अधिक नहीं बचेगा तब उसकी चिकित्सा के लिए राजा बिम्बिसार से अनुज्ञा ले कर जीवक को बुलाया गया। श्रेष्ठी ने जीवक को कहा—वैद्य, मुझे चंगा कर दो तो

अपना सब धन आपको दे कर आपका दास बन जाऊँगा। जीवक ने उसे देखभाल कर पूछा—श्रेष्ठी, आप सात महीने पीठ के बल सात महीने एक करवट और सात महीने दूसरी करवट लेटे रह सकोगे? श्रेष्ठी ने कहा—मेरी जान बचती है तो अवश्य लेटा रहूँगा। जीवक ने तब उसके फोड़े को चीरा, उसमें से दो कृमि निकाले और मरहम-पट्टी करके श्रेष्ठी को सुला दिया। श्रेष्ठी के परिचारकों को वे कृमि दिखा कर जीवक ने कहा—इनमें से एक कृमि पाँच दिन में श्रेष्ठी के भेजे में पहुँचने वाला था, दूसरा तीन दिन में; जिन वैद्यों ने पहले कृमि की गति पहचानी उन्होंने कहा श्रेष्ठी पाँच दिन में मर जायगा, जिन्होंने दूसरे की देखी उन्होंने कहा तीन दिन में; अब श्रेष्ठी न पाँच दिन में मरेगा न तीन में। सात दिन बाद श्रेष्ठी ने कहा—वैद्य मुझसे तो अब पीठ के बल और सोया नहीं जाता। जीवक ने कहा—श्रेष्ठी आपने तो कहा था सात महीने सोया रहूँगा, अच्छा अब दाहिनी करवट लेट जाओ। सात दिन बाद फिर वैसी ही बात हुई, तब जीवक ने उसे बाँई करवट लेटा दिया। जब सात दिन बाद श्रेष्ठी ने फिर कहा कि अब तो मुझसे बाँई करवट नहीं लेटा जाता,

तब जीवक ने कहा—मैं यह पहले से जानता था, पर आपका फोड़ा अब ठीक हो गया है, मैं आज ही पट्टी खोले दे रहा हूँ। श्रेष्ठी को उठाने के बाद जीवक ने पूछा—मेरी दक्षिणा? श्रेष्ठी ने कहा—मैं अपना सर्वस्व आपको दे दूँगा और आपका दास बन कर रहूँगा। जीवक ने कहा—नहीं, अपना सर्वस्व मुझे न दो और मेरे दास मत बनो, एक लाख (कार्षापण) राजा बिम्बिसार को और एक लाख मुझे दे दो। श्रेष्ठी ने वैसा ही किया।

जीवक के कारनामों की ऐसी अनेक बातें हमारे पुराने ग्रन्थों में दर्ज हैं।

———

७. अजातशत्रु और वृजि-संघ

मगध के राजा बिम्बिसार का उत्तराधिकारी उसका बेटा अजातशत्रु हुआ। भारत के महाजनपदों में जो चढ़ा-ऊपरी चल रही थी उस प्रसंग में मगध ने अंग को और कोशल ने काशी को जीत लिया था। फिर मगध और कोशल का मुकाबला हुआ और अजातशत्रु ने कोशल के राजा प्रसेनजित् को तीन बार हराया। चौथी बार बूढ़े प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को कैद कर लिया, पर फिर छोड़ कर अपनी लड़की ब्याह दी।

अंग और कोशल से निपटारा होने के बाद अजातशत्रु की आँख वृजि-संघ पर लगी हुई थी। बुद्धदेव जब अन्तिम बार राजगृह के पास गृध्रकूट पहाड़ी पर ठहरे हुए थे, तब अजातशत्रु ने मगध के महामात्य वर्षकार को

बुला कर कहा—भगवान् के पास जा कर उनका कुशल-क्षेम पूछ कर उन्हें मेरी इच्छा बतलाना, देखना वे उस-पर क्या कहते हैं, जो कहें सो लौट कर मुझे बताना।

वर्षकार ने गृध्रकूट जा कर बुद्ध से यह चर्चा की कि राजा अजातशत्रु वृजि संघ को जीतने की सोच रहा है। बुद्ध ने यह सुन कर अपने 'उपस्थापक' (प्राइवेट सेक्रेटरी) आनन्द से पूछा—क्यों आनन्द, तुमने क्या सुना है, क्या वृजियों की सभाएँ बार-बार होतीं और उनमें उपस्थिति भरपूर होती है?

"भगवन्, मैंने सुना है कि वृजियों की सभाएँ बार बार होतीं और उनमें उपस्थिति भरपूर होती है।"

"जब तक आनन्द वृजियों की सभाएँ बार बार और भरपूर होती हैं, तब तक आनन्द वृजियों की बढ़ती की ही आशा करनी चाहिए न कि 'परिहाणि' (अवनति) की।"

बुद्धदेव ने फिर पूछा—क्यों आनन्द, तुमने क्या सुना है, क्या वृजि सभाओं में मिल कर बैठते, मिल कर उद्यम करते और मिल कर 'वृजि-करणीयों' (वृजियों के राष्ट्रीय कर्त्तव्यों) को करते हैं? आनन्द ने इसका भी हाँ में उत्तर दिया, और बुद्ध ने कहा कि तब तो वृजियों

की बढ़ती की ही आशा करनी चाहिए, न कि परिहाणि की।

बुद्ध का तीसरा प्रश्न था—क्या वृजि बाकायदा विधान बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते, बने हुए नियम को तोड़ते नहीं, और नियम से चले हुए पुराने 'वृजि-धर्म' (वृजियों के राष्ट्रीय विधान और संस्थाओं) के अनुसार मिल कर बर्त्तते हैं ? आनन्द के फिर हाँ करने पर उन्होंने फिर कहा कि तब तो वृजियों की बढ़ती की ही आशा करनी चाहिए, परिहाणि की नहीं।

बुद्ध ने और पूछा—क्या वृजि जो उन वृजियों के वृद्ध-बुजुर्ग हैं उनका सत्कार करते, गौरव रखते, उन्हें मानते पूजते और उनकी सुनने योग्य बातों को मानते हैं ? आनन्द ने फिर वैसा ही उत्तर दिया और बुद्ध ने फिर वैसी ही आशा प्रकट की।

उनका पाँचवाँ प्रश्न था—क्या वृजि जो उनकी कुल-स्त्रियाँ और कुल-कुमारियाँ हैं उनपर ज़ोर-ज़बरदस्ती करके तो उन्हें नहीं बैठा लेते ? आनन्द ने कहा वे वैसा नहीं करते। तब बुद्धदेव ने कहा कि उस दशा में उनके अभ्युदय की ही आशा करनी चाहिए, अवनति की नहीं।

छठी बार बुद्ध ने पूछा—क्या वृजियों के जो ...

वृजि-चैत्य (राष्ट्रीय मन्दिर, पुरखों की समाधियाँ) हैं उनका वे सत्कार-गौरव करते हैं, उनके लिए पहले दी हुई धार्मिक बलि को छीनते तो नहीं ? इसका उत्तर भी वृजियों के पक्ष में मिला और उन्होंने फिर वैसी ही बात दोहराई।

बुद्धदेव ने अन्तिम प्रश्न किया—क्या वृजियों में अपने अर्हतों (त्यागी विद्वानों) की रक्षा और प्रतिष्ठा करने की परम्परा बनी हुई है ? क्या बाहर के अर्हत् उनके राज्य में आ सकते हैं और आये हुए सुगमता से विचर सकते हैं ? अन्तिम बार भी आनन्द ने वैसा ही उत्तर दिया और बुद्ध ने कहा कि तब वृजियों की बढ़ती की ही आशा करनी चाहिए, न कि परिहाणि की।

वर्षकार ने यह चर्चा जा कर अपने राजा को सुनाई। अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह निरी सैनिक शक्ति से वृजि-संघ को जीत नहीं सकता। तो भी उसने कहा—चाहे ये वृजि बड़े समृद्ध हैं, बड़े प्रभावशाली हैं, तो भी मैं इन्हें उखाड़ डालूँगा, नष्ट कर डालूँगा, अनीति-मार्ग में फँसा दूँगा। उसने वर्षकार को कहा कि गुप्तचरों और रिश्वत द्वारा वृजि-संघ में फूट का बीज बोवो और उन्हें कर्त्तव्यमार्ग से डिगा दो। ऐसा करते हुए बुद्ध के निर्वाण

के चार बरस बाद उसने वैशाली जीत ली।

गृध्रकूट की चट्टान से भगवान् बुद्ध ने राष्ट्रों की अवनति न होने के जो सात सिद्धान्त कहे, वे हमारे वाङ्मय में 'सत्त अपरिहाणि धम्म' अर्थात् अपरिहाणि के सात सिद्धान्त कहलाते हैं।

---

८. मगध और पारस के सम्राट्

भारत के महाजनपद जब एक-दूसरे से होड़ बढ़े हुए साम्राज्य बनाने की चेष्टा में लगे थे, तभी ईरान में भी साम्राज्य स्थापित हुआ। ईरान के लोग भी अपने को अभिमानपूर्वक आर्य कहते थे। उनमें पार्स नाम की एक जाति थी जो दक्खिनपच्छिमी ईरान में फ़ारिस की खाड़ी पर रहती थी। उसी के नाम से वह देश पारस या फ़ारिस कहलाया। पार्स में हखामन नामक पुरुष ने अपना राजवंश स्थापित किया जिसने धीरे धीरे सारे ईरान को अपने राज्य में ले लिया।

बिम्बिसार और अजातशत्रु वाला मगध का राजवंश शैशुनाक कहलाता था, क्योंकि उसे बिम्बिसार के पूर्वज शिशुनाक ने स्थापित किया था। मगध का शैशुनाक वंश

और पार्स का हखामनी वंश समकालिक थे।

मगध का राजा जब अजातशत्रु था, तभी हखामनी वंश में सम्राट् कुरुष् (अर्थात् कुरु)† हुआ। उसके साम्राज्य के अन्तर्गत अरब मिस्र और पच्छिमी एशिया के देश भी थे। पच्छिमी एशिया से हमारा अभिप्राय आजकल के तुर्की और उसके दक्खिन लगे हुए सीरिया और फिलिस्तीन प्रदेशों से है। तुर्की में तुर्क लोग तो आज से कोई पाँच सौ बरस पहले ही आये हैं। कुरु के ज़माने में वहाँ कुछ जातियाँ ईरानियों और उत्तर भारत के लोगों से मिलती-जुलती तथा कुछ अरब के लोगों से मिलती-जुलती रहती थीं।

पूरब तरफ कुरु ने आजकल के अफ़गानिस्तान को जीता। अफ़गानिस्तान का मुख्य भाग तब भारत में गिना जाता था, पर हिन्दूकश के उत्तरपच्छिम उसका जो बलख

† कुरुष् में जो अन्तिम ष् है वह प्रथमा एकवचन का प्रत्यय है। संस्कृत, प्राचीन पारसी और यूनानी नामों के अन्त में इस तरह स् प्रत्यय लगा होता है, पर हिन्दी में प्रथमा एकवचन में नामों को बिना प्रत्यय के ही बर्त्तते हैं। कुरुष् को यूनानी में जैसा लिखते थे उसका रोमक लिपि में रूपान्तर होता है—Cyrus, जिसका आधुनिक अंग्रेजी उच्चारण होता है साइरस्। मूल उच्चारण कुरुष् ही है।

प्रदेश है वह ईरान और भारत के बीच साझा माना जाता था। इसी प्रकार आजकल के अफगानिस्तान का दक्खिन-पच्छिमी प्रान्त सीस्तान या शकस्थान भी। कुरु ने बलख को और शकस्थान को जीत लिया; शकस्थान के दक्खिन मकों के देश मकरान को भी। तब उसके साम्राज्य की सीमा भारत से लगने लगी।

हिन्दूकश पर्वत और काबुल तथा कूनड़ नदियों के बीच का सुन्दर प्रदेश कपिश कहलाता था। कूनड़ नदी हिन्दूकश के पूर्वी छोर से निकल कर दक्खिनपच्छिम बहती हुई जलालाबाद के पास काबुल नदी में मिलती है। कपिश की राजधानी कापिशी थी*। कुरु ने भारत की सीमा लाँघ कर कपिश को भी जीता और कापिशी नगरी उजाड़ दी। काबुल नदी के दक्खिन पक्थों अर्थात् पठानों का प्रदेश भी उसने जीत लिया। आजकल के सिन्ध प्रान्त को तब सौवीर कहते थे। कुरु ने मकरान के रास्ते उसपर भी चढ़ाई की, पर उसमें बुरी तरह हारा। वहाँ उसकी सेना का संहार हुआ और वह स्वयं केवल सात

* कापिशी ठीक कहाँ थी, इसकी खोज अभी तक नहीं हो पाई।

साथियों के साथ बच कर भागा।

अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उसका बेटा दर्शक हुआ। उसका समकालिक कुरु का भतीजा हखामनी सम्राट् दारयवहु था। दारयवहु ने भारत की ओर अपना साम्राज्य और बढ़ाया।

बलख को हमारे पुरखा बाह्लीक कहते थे। बाह्लीक का ही रूपान्तर बलख है। हिन्दूकश पर्वत के उत्तरी ढाल पर बलख के पूरब और वंक्षु या आमू नदी के दक्खिन का प्रदेश अब बदख्शाँ कहलाता है। 'बदख्शाँ' का पुराना रूप 'द्व्यक्ष' है। वंक्षु नदी पामीर पठार के पच्छिमी छोर के साथ-साथ दक्खिन से उत्तर बहती हुई एकाएक पच्छिम घूम जाती है जहाँ वह उत्तरवाहिनी है वहाँ द्व्यक्ष या बदख्शाँ की पूरबी सीमा भी वही है। बदख्शाँ के पूरब का प्रदेश पामीर है। बदख्शाँ और पामीर को मिला कर हमारे पुरखा कम्बोज कहते थे। भारत के सोलह महाजनपदों में कम्बोज और गन्धार की जोड़ी भी गिनी जाती थी। गन्धार महाजनपद के अन्तर्गत तब कश्मीर भी था। कपिश के पूरबी छोर से अर्थात् कूनड़ नदी से सिन्ध नदी तक पच्छिमी गन्धार था जिसकी राजधानी पुष्करावती काबुल

और स्वात नदियों के संगम पर थी। पूरवी गन्धार सिन्ध और जेहलम (वितस्ता) नदियों के बीच था; उसकी राजधानी तक्षशिला थी। गन्धार के दक्खिन लगे हुए सिन्ध नदी के बिचले काँठे को सिन्धु देश कहते थे।

दारयवहु ने लगभग ५०५ ई० पू० में कम्बोज, पच्छिमी गन्धार और सिन्धु जीत लिये।

वंक्षु के समान्तर पूरब तरफ सीर नदी बहती है और वे दोनों अराल सागर में मिलती हैं। वंक्षु और सीर के बीच के दोआब को जिसमें बुखारा, समरकन्द आदि नगरियाँ हैं, सुग्ध कहते थे। वह पारसी साम्राज्य का उत्तरपूर्वी सीमा प्रान्त था। अराल और कास्पी सागरों के बीच अब जो मरुभूमि है, उस युग में वह दलदल थी, जिसके कारण वे दोनों सागर एक दूसरे से मिले हुए थे, और वंक्षु अपना पानी उसी दलदल में डालती थी। कास्पी सागर से सीर नदी तक का प्रदेश अब पच्छिमी तुर्किस्तान कहलाता है। सुग्ध दोआब का नाम अब उज़बकिस्तान भी है। पर तुर्क लोग इस देश में पाँचवीं शताब्दी से ही आये हैं। उज़बक तो पन्द्रहवीं शताब्दी में आये हैं। पुराने सुग्धी लोग ईरानियों से मिलते-

जुलते थे। सीर के काँठे में शक लोग रहते थे जो अफगानिस्तान के दक्खिनपच्छिम वाले शकों से मिलते-जुलते थे। सीर काँठे के शकों को ईरानी लोग 'सका तिग्रखौदा' अर्थात् नुकीली टोपी वाले शक कहते थे।

मगध में दर्शक का बेटा सम्राट् अज उदयी हुआ। उसने गंगा और सोन के संगम पर पाटलिपुत्र नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। लाल लाल फूलों वाले पाटलि या पांडर पेड़ों के कारण उस नगर का यह नाम पड़ा। उसे अब हम पटना कहते हैं। लगभग ४८० ई० पू० में अज ने अवन्ति राज्य को भी जीत लिया। तब पंजाब के पूरब का भारत का मुख्य भाग प्रायः समूचा मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। पारसी और मगध साम्राज्यों के बीच ठेठ पंजाब और सिन्ध में अनेक छोटे-छोटे राज्य—मुख्यतः संघ अर्थात् गणराज्य—थे।

अज का समकालिक दारयवहु का उत्तराधिकारी हखामनी सम्राट् क्षयार्श हुआ। अज ने जब अवन्ति को जीता तभी क्षयार्श ने यूनान पर चढ़ाई की। उस चढ़ाई में उसके साथ गन्धार और सिन्धु के सैनिक भी गये थे। यूनान के लोग तब तक कपास को न जानते और ऊनी

कपड़े ही पहनते थे। जब पहलेपहल भारत के लोगों से उन्हें कपास के पौधे का पता मिला तब वे उसे आश्चर्य से ऊन का पेड़ कहने लगे।

अज उदयी का बेटा नन्दिवर्धन और उसका बेटा महानन्दी हुआ। वे दोनों प्रतापी सम्राट् थे और उन्होंने साम्राज्य की सीमाओं को आगे बढ़ाया। नन्दिवर्धन की सहायता से लगभग ४२५ ई० पू० में कम्बोज के सिवाय भारत का समूचा उत्तरपच्छिमी अंचल पारसी साम्राज्य से मुक्त हो गया।

कहते हैं उसी समय पच्छिमी गन्धार में पाणिनि नामक आचार्य थे। पाणिनि ने संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा जिसमें आठ अध्याय होने से उसका नाम अष्टाध्यायी पड़ा। किसी भी भाषा का वैसा पूरा व्याकरण शायद ही कभी किसी ने लिखा हो। पाटलिपुत्र में तब शास्त्रकारों की परीक्षा हुआ करती थी। कहते हैं पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी ले कर पाटलिपुत्र गये। वहाँ परख में उसके पूरा उतरने पर सारे भारत में उसकी प्रसिद्धि हो गई और आज तक संस्कृत सीखने वाले उस ग्रन्थ का अभ्यास करते हैं।

३. नन्द-मौर्य पर्व

१. अलक्सान्दर भारत के अञ्चल में

सम्राट् महानन्दी के बेटों से उनके एक सम्बन्धी महापद्म नन्द ने राज्य ले लिया। नन्दिवर्धन और महानन्दी भी नन्द राजा कहलाते थे। पर वे 'पूर्व नन्द' (पहले नन्द) थे, और उनके मुकाबले में महापद्म और उसका बेटा 'नव नन्द' (नये नन्द) कलहाये। महापद्म उस राजा का नाम इसलिए पड़ा कि उसके कोश में बहुत धन था। उस कोश के सहारे उसने प्रबल सेना खड़ी की जिससे वह उग्रसेन भी कहलाया। उस सेना के बल पर उसने मगध साम्राज्य को पहले से भी अधिक मजबूत बनाया, उस साम्राज्य के अधीन कई जनपदों में जो सामन्त राजवंश चले आते थे उन्हें उखाड़ कर उनका शासन सीधे अपने हाथ में ले लिया। सब पुराने क्षत्रिय राजवंशों को उखाड़

देने के कारण महापद्म को सर्वक्षत्रान्तक कहा गया।

महापद्म के बेटे धन नन्द के राज्य-काल में मकदूनिया के राजा अलक्सान्दर ने भारत पर चढ़ाई की।

मकदूनिया यूनान की उत्तरपूरबी सीमा का प्रदेश है। ठेठ यूनान में अनेक छोटे राज्य—कुछ एकराज्य कुछ गणराज्य—थे। पारसी सम्राट् क्षयार्श ने उनपर चढ़ाई की, पर उन्हें जीत न सका था। उसके प्रायः एक शताब्दी बाद मकदूनिया के राजा फिलिप ने उन सब को जीत लिया।

फिलिप का बेटा अलक्सान्दर केवल यूनान-मकदूनिया के राज्य से सन्तुष्ट न था, वह जगत्-विजय के सपने लेता था। पर उसके सामने कौन सा जगत् था? यूनान के उत्तरपच्छिम युरोपी देशों में जो लोग रहते, वे तब तक जंगली थे। उनकी ओर अलक्सान्दर का ध्यान न था। पर यूनान, उसके पूरबी छोर और मिस्र से मध्य एशिया तक फैला पारसी साम्राज्य तथा भारत यही उस युग के यूनानियों की दृष्टि में सभ्य जगत् था जिसे जीतने के सपने युवक अलक्सान्दर देखता था। भारत के पूरब चीन को तब तक इस सभ्य जगत् के लोग न जानते थे।

अलक्सान्दर ने पारसी साम्राज्य पर चढ़ाई की (३३४

ई० पू०)। बोस्फोरस खाड़ी के पास पहली लड़ाई हुई जिसमें जीत कर अलक्सान्दर ने वह प्रायद्वीप ले लिया जो आजकल तुर्की देश का पच्छिमी अंश है। अगले बरस वह आगे बढ़ा। तब सीरिया की सीमा पर पारसी सम्राट् दारयवहु (३य) के साथ उसकी पहली लड़ाई हुई। पारसी सेना का दाहिना बाजू इस लड़ाई में जीत रहा था; फिर भी दारयवहु हिम्मत हार कर लड़ाई के बीच में ही भाग गया। तब अलक्सान्दर ने सारा सीरिया और मिस्र लेते हुए उफ्रातु (फरात) नदी तक का देश अधीन कर लिया।

दो बरस बाद अलक्सान्दर फिर आगे बढ़ा। दारयवहु तिग्रिस (दजला) नदी के इस ओर था। उनकी फिर लड़ाई हुई और दारयवहु फिर लड़ाई के बीच से जीतता जीतता भाग निकला! एक वर्ष में ईरान को अधीन कर अलक्सान्दर ने फिर उसका पीछा किया। तब दारयवहु अपने एक सम्बन्धी की शरण लेने बख्त्र अर्थात् बलख की ओर भागा। बलख को ईरानी बख्त्र कहते थे। दारयवहु को वहाँ पहुँचने के पहले ही उसी के 'क्षत्रपों' (प्रान्त-शासकों) ने पकड़ कर मार डाला।

अलक्सान्दर हरात तक आने के बाद बलख का रास्ता छोड़ दक्खिन मुड़ा और ३३० ई० पू० के अन्त में शकस्थान में हैतुमन्त (=सेतुमन्त) नदी पर आ निकला। सेतुमन्त या हैतुमन्त को अब हेलमन्द कहते हैं। अगले वसन्त में उसने अफगानिस्तान पठार* के दक्खिनी पहाड़ चढ़ कर अरखुती की दून† में प्रवेश किया। वह दून भारत में गिनी जाती थी। अरखुती को अब अरगन्दाब (=अरगन्द-आब) कहते हैं। अरगन्द अरखुती का ही रूपान्तर है। ईरानी लोग उसे हरह्वैती या हरउवती कहते थे जो सरस्वती का रूपान्तर था। हरह्वैती का उच्चारण यूनानियों ने अरखुती किया। अलक्सान्दर ने उस नदी के किनारे एक अलक्सान्द्रिया नगरी बसाई। अलक्सान्द्रिया नाम घिस कर अलकन्द हो गया। संस्कृत में ज़िले को आहार या हार कहते थे। अलकन्द का प्रदेश अलकन्दहार कहलाया और वह नाम फिर घिस कर कन्दहार हो गया जो अब

---

* पठार = पहाड़ों के ऊपर का मैदान।

† दून = पहाड़ों के बीच घिरी मैदान की पट्टी, जो प्रायः किसी नदी के काँठे से बनी होती है।

तक उस प्रदेश और उसकी राजधानी का नाम है।

हरउवती या अरखुती में छावनियाँ डाल कर जाड़ों से पहले आलक्सान्द्र काबुल दून चला आया और वहाँ से हिन्दूकश चढ़ कर बलख पर उतरा। बलख से उसने वंक्षु नदी (आमू दरिया) पार कर सुग्ध पर चढ़ाई की और उसकी पूर्वी सीमा सीर नदी तक जीतता गया। बलख और सुग्ध के ईरानी सरदारों को दबाने में उसे पौने दो बरस लगे। सुग्ध के युद्ध में ईरानी पक्ष की तरफ से शशिगुप्त नामक भारतीय राजा भी लड़ा जो पारसी साम्राज्य का सामन्त था और जिसका राज्य हिन्दूकश के उत्तर तरफ था। वह प्रकटतः कम्बोज महाजनपद का राजा था। युद्ध में हारने के बाद उस युग की प्रथा के अनुसार शशिगुप्त ने अलक्सान्द्र की सेवा स्वीकार की।

तक्षशिला का युवराज आम्भि सुग्ध में ही अलक्सान्द्र के पास अपने जनपद की अधीनता का सन्देश ले कर पहुँचा था। उसके साथ ३२७ ई० पू० की गर्मियों में फिर हिन्दूकश पार कर अलक्सान्द्र भारत की सीमा में काबुल दून में उतरा।

काबुल से तक्षशिला का रास्ता तब खैबर घाट से

जाने के बजाय काबुल नदी के साथ साथ पुष्करावती हो कर जाता था। काबुल नदी में उत्तर तरफ से अलिषंग, कूनड़, पंजकोरा और स्वात नदियाँ अपना पानी लाती हैं। कूनड़ के पच्छिम का प्रदेश कपिश था, उसके पूरब का पच्छिमी गन्धार। इन प्रदेशों में जो लोग रहते थे उन्होंने चप्पा चप्पा भूमि छोड़ने के पहले अलक्सान्दर का डट कर सामना किया।

पंजकोरा को तब गौरी कहते थे। गौरी या पंचगौरी का रूपान्तर ही पंजकोरा है। उसके पूरब प्रदेश की राजधानी का नाम मस्सग या ऐसा कुछ था। वहाँ बहुत कड़ी लड़ाई हुई। 'मस्सग' के गढ़ में ७००० पंजाबी सैनिक भी थे। उन्होंने देखा कि वह गढ़ अब अधिक ठहर नहीं सकता तो अपने देश को खिसक जाने की सोची। अलक्सान्दर ने उन्हें गढ़ से निकल जाने की अनुज्ञा दे दी, इस शर्त पर कि वे उसकी तरफ से लड़ें। उन्होंने गढ़ से सात मील दूर डेरा डाला। अलक्सान्दर को पता लगा कि उनका इरादा उसकी तरफ से लड़ने का नहीं, प्रत्युत पंजाब जा कर उसके विरुद्ध आग सुलगाने का है। रात के समय वे पड़े सोते थे कि अलक्सान्दर ने उनका शिविर घेर उनपर

आक्रमण कर दिया। उन सैनिकों ने अपनी स्त्रियों को बीच में रख चक्कर बना कर लड़ाई शुरू की। उनमें से एक एक पुरुष और स्त्री ने अन्तिम साँस तक लड़ कर अपनी जान दी। 'मस्सग' के बाद दो और गढ़ों पर वैसी ही लड़ाइयाँ हुईं।

अक्लकसान्द्र ने अपने दो सेनापतियों को काबुल नदी के रास्ते भेजा था। उन्हें भी पुष्करावती पर उसी तरह लड़ाई लड़नी पड़ी। अन्त में अलक्सान्द्र भी पुष्करावती आया। गौरी-सुवास्तु प्रदेश से हट कर पच्छिमी गन्धार के बहुत योद्धा सिन्धु नदी के किनारे अवर्ण नामक गढ़ में जुटे थे। वह गढ़ नदी के घाट से ऊपर था। वह भी घोर लड़ाई के बाद लिया गया। हिन्दूकश से सिन्धु नदी तक का भारत का अंचल लेने में यों अलक्सान्द्र को छः मास लगे। उसने शशिगुप्त को उस प्रदेश का शासन सौंपा।

सिन्ध के पूरब तरफ़ पूर्वी गन्धार या तक्षशिला का राज्य था जिसका राजा अलक्सान्द्र को पहले से ही बुला रहा था। उसकी सहायता से अलक्सान्द्र की सेना ने सिन्ध पार की और तक्षशिला आ कर थकान उतारी।

गन्धार के पूरब केकय देश था और उसके उत्तर पहाड़ी प्रदेश अभिसार*। केकय के राजा पुरु को अलक्सान्दर के दूतों ने सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने का सन्देश दिया तो उसने उत्तर दिया कि युद्ध के मैदान में तुम्हारे सम्राट् का स्वागत करूँगा। अभिसार का राजा भी पुरु से मिलने की तैयारी कर रहा था।

इससे पहले कि वे दोनों मिलें, कड़ी गर्मी की परवा न कर अलक्सान्दर वितस्ता के किनारे पहुँच गया। पुरु सब घाट रोके हुए था। अलक्सान्दर ने पहले तो अपनी सेना में ऐसी चहलपहल बनाये रक्खी कि पुरु को रोज यह लगे कि आज वह आक्रमण करेगा, फिर ऐसी रसद् जुटानी शुरू की कि मानो महीनों वहीं टिकेगा। यों जब पुरु कुछ असावधान हुआ तब एक रात चुपके चुपके अलक्सान्दर ने अपनी सेना के बड़े अंश को २० मील ऊपर या नीचे हटा कर वितस्ता पार कर ली। पता लगते ही पुरु भी उधर बढ़ा।

जम कर लड़ने में अलक्सान्दर भी पुरु से बाजी न

* अभिसार कश्मीर के दक्खिन की हिमालय की उपत्यका है जिसमें अब पुंच, राजौरी, भिम्भर बस्तियाँ हैं।

ले पाता, पर उसकी मुख्य शक्ति उसके फुर्तीले सवारों में ही थी। पारसी सम्राट् की तरह पुरु भागा नहीं। जब तक उसकी सेना में ज़रा भी व्यवस्था रही वह ऊँचे हाथी पर चढ़ा लड़ता रहा। उसके नंगे कंधे पर शत्रु का बर्छा लगा। अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा तो आम्भि ने घोड़ा कुदाते हुए उसका पीछा किया और पुकार कर उसे अलक्सान्द्र का सँदेसा दिया। घायल हाथ से पुरु ने घृणित देशद्रोही पर बर्छा चलाया, पर आम्भि बच निकला। पुरु को फिर सवारों ने घेर लिया जिनमें से एक उसका मित्र भी था।

जब घायल और थका-माँदा वह अलक्सान्द्र के सामने लाया गया तब अलक्सान्द्र ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया और दुभाषिये द्वारा पूछा कि तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव किया जाय। "जैसा राजा राजाओं के साथ करते हैं", पुरु ने गौरव से उत्तर दिया। अलक्सान्द्र ने तब उसे शशिगुप्त की तरह अपनी सेना में ऊँचा पद दिया।

इधर अलक्सान्द्र पंजाब के मध्य तक पहुँच रहा था, उधर पीछे हरउवती और सुवास्तु प्रदेशों में बलवे होने के समाचार आये। उन्हें दबाने के लिए उसने शशिगुप्त के पास और सेना भेजी।

पुरु के राज्य के पूरब असिक्नी अर्थात् चनाब नदी पर ग्लुचुकायन नाम का छोटा सा संघ (गणराज्य) था। उसने भी लड़े बिना हथियार नहीं रक्खे। ग्लुचुकायनों के ३७ कोटले जीत कर अलक्सान्दर ने पुरु के अधीन कर दिये।

असिक्नी के पूरब मद्र देश में पुरु के भतीजे छोटे पुरु का राज्य था। उसने युद्ध नहीं किया। आगे इरावती अर्थात् रावी नदी के पूरब कठों का संघ था। कठ संघ की भूमि ठीक वह थी जिसे पंजाब के लोग अब माझा कहते हैं, अर्थात् अमृतसर-पट्टी-तरनतारन प्रदेश। अलक्सान्दर कठ देश पर आ पहुँचा तो कठों ने अपनी राजधानी साङ्कल के चौगिर्द रथों के तीन चक्कर डाल कर शकटव्यूह बनाया और खूब डट कर लड़े। पीछे से बड़े पुरु की कुमुक आने पर ही अलक्सान्दर साङ्कल को ले सका। पर वहाँ उसका जैसा सामना किया गया उससे वह ऐसा खीझ उठा कि साङ्कल को उसने जीतने के बाद मिट्टी में मिला दिया।

कठों के संघ में प्रत्येक बच्चा संघ का माना जाता था। संघ की ओर से वहाँ गृहस्थों की सन्तान के निरीक्षक नियत होते थे। एक महीने की आयु में वे जिस बच्चे को कमजोर या कुरूप पाते उसे मरवा देते थे।

विपाशा (ब्यासा या ब्यास नदी) पहुँचने पर मकदूनियों को पता मिला कि उस पार कठ से बड़ा एक और लड़ाकू संघ है, फिर पूरवी पंजाब में और भी बड़ा और स्वाधीनताहठी संघ है, जिसके आगे मगध का सम्राट् नन्द अपनी सेना के साथ सचेत है। अलक्सान्दर की सेना को भारत में पैर रखने के बाद से पग पग पर जैसा लड़ना पड़ रहा था उससे वह ऊब चुकी थी। वह यह जान कर बिगड़ उठी कि भारत की मुख्य शक्ति से अभी सामना होना बाकी ही है। उसने आगे बढ़ने से स्पष्ट ना कर दी। अलक्सान्दर ने उसे बड़े बड़े बढ़ावे दिये, पर वे बहरे कानों पर पड़े। तब अत्यन्त निराश हो कर वह तीन दिन अपने तम्बू के बाहर न निकला। चौथे दिन देवताओं को बलि दे कर उसने यात्रा के शकुन पूछे। उसकी लाज बचाने के लिए पूरब यात्रा के शकुन अनुकूल न निकले! तब ब्यासा के किनारे अपने वहाँ तक पहुँचने की याद में उसने वेदियाँ बनवाईं और सेना को वापिस लौटने का आदेश दिया।

रास्ते में कई जगह छावनियाँ छोड़ते हुए वह मुख्य सेना को वितस्ता तक वापिस लाया। वहाँ से उसने जल

और स्थल मार्ग द्वारा दक्खिनी पंजाब और सिन्ध हो कर लौटने की तैयारी की जिसके लिए दो हज़ार नावें जुटाईं। जिस दिन यात्रा का आरम्भ था, उस दिन नदी के बीच खड़े हो उसने सोने के बर्तन से भारतीय नदियों और अन्य देवताओं को अर्घ्य दिया और तब सेना को प्रयाण का आदेश दिया।

वितस्ता और चनाब के संगम के बायें तरफ शिवि लोगों का संघ था। उसके पड़ोस में ही आजकल के झंग-मघियाना प्रदेश में एक और संघ था जिसका नाम यूनानियों ने 'अगलस्स' लिखा है। हम उसका मूल नाम ढूँढ नहीं सके। शिवियों ने बिना लड़े अधीनता मान ली, पर 'अगलस्स' वीरता से लड़े।

चनाब की धारा में कुछ और नीचे जाने पर बायें तरफ मरुभूमि के किनारे रावी के दोनों तटों पर मालवों का संघ-राज्य था। उसके पड़ोस में ब्यासा के तट पर क्षुद्रक संघ था। ब्यासा तब शायद सतलज में मिलने के बजाय रावी-संगम के नीचे चनाब में मिलती थी। उसके उस पुराने पाट के चिह्न अब भी विद्यमान हैं।

मालव और क्षुद्रक मिल कर लड़ने की सोच रहे थे।

चित्र ३

बुद्ध, सारनाथ मूर्ति

चित्र ४

पुरु
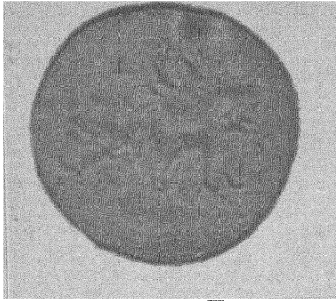
(अलक्सान्दर के निकाले पदक पर का चित्र)

चित्र ५

राजा अशोक जुलूस में

(साँची स्तूप की बाड़ के पूरवी तोरण पर से)

वे दोनों राष्ट्र पंजाब में सब से कड़े लड़ाके और स्वाधीनता-हठी प्रसिद्ध थे। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर कि ऐसे वीर संघों से लड़ना होगा, फिर विद्रोह करने पर उतारू हो गई। बड़ी कठिनाई से अलक्सान्दर ने उसे यह समझा कर मनाया कि लड़ाई के बिना अब चारा ही क्या है।

परन्तु मालवों और क्षुद्रकों की कोई खड़ी सेना न थी। उनके सभी कृषक जवानों के इकट्ठे होने से सेना बनती थी। वे लोग अलक्सान्दर की तेज़ चाल का अन्दाज़ भी न कर सके। क्षुद्रक सेना तो आई ही न थी। मालवों ने यह कल्पना भी न की कि सन्दल बार* मरुभूमि को अलक्सान्दर दो दिन में ही पार कर लेगा और उसकी सेना उनके गाँवों और नगरों पर एकाएक टूट पड़ेगी। अनेक मालव कृषक अपने खेतों पर ही काटे गये। पर उस दशा में भी उन्होंने गहरा मुकाबला किया। मालवों के देश में

* नदियों के खादर या कछार को पंजाब में कच्छ कहते हैं, जो कि संस्कृत शब्द है। नदियों की पहुँच के परे की सूखी ऊँची मरुभूमि को वहाँ बार कहते हैं। संदल बार अर्थात् चन्द्र नदी (चन्द्रभागा या चनाब) की बार वह थी जिसमें अब नहरें आने के बाद लायलपुर आदि बस्तियाँ बसी हैं।

अलक्सान्द्र को ६-७ लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं।

आजकल के कोट-कमालिया के स्थान पर मालवों का एक कोट तब भी था। वहाँ पहली बड़ी लड़ाई हुई। उस कोट को लेने के बाद अलक्सान्द्र नदी के कच्छ और जंगलों में मालवों का पीछा करता रहा। अन्त में यह देख कर कि अधिकतर मालव रावी के पूरब चले गये हैं, उसने रावी पार की। रावी के घाट पर कुछ समय सामना करने के बाद मालव सेना पड़ोस के एक नगर में हट गई। अलक्सान्द्र ने उसे घेर लिया।

अगले दिन उसने नगर के परकोटे पर आक्रमण किया। मालव योद्धा तब भीतरी कोटले में चले गये। अलक्सान्द्र सीढ़ी लगा कर स्वयं कोटले की दीवार पर चढ़ा। उसके तीन साथी भी उसके साथ ऊपर पहुँच गये। बाकी लोग अभी सीढ़ी पर थे कि सीढ़ी टूट गई।

दीवार पर खड़े अलक्सान्द्र पर मालवों के बाण आ कर पड़ने लगे। उस दीवार के साथ वहीं एक पेड़ था। अलक्सान्द्र और उसके साथी उसके सहारे नीचे कूद गये और उसके मोटे तने की ओट से लड़ने लगे। तीन साथियों में से एक माथे में बाण खा कर गिरा। एक और

बाण अलक्सान्द्र का कवच फाड़ कर उसकी छाती में लगा। जिस मालव धनुर्धर ने वह बाण मारा था उसने दौड़ कर अलक्सान्द्र पर तलवार चलाई, पर अलक्सान्द्र ने उसे काट गिराया। खून बहने के कारण कुछ देर बाद अलक्सान्द्र गिर पड़ा। उसके दो साथी उसे ढालों से ढक कर खड़े लड़ते रहे। उसके घायल हो कर गिरने के बाद भारत के क्षत्रियों की प्रथा के अनुसार किसी मालव योद्धा ने उसपर चोट नहीं की।

बाहर खड़े मकदूनी सैनिक इस बीच चिन्ता से व्याकुल हो उठे। उन्होंने देखा कोटले की दीवारें मिट्टी की हैं; उनमें कीलें ठोकीं, ऊपर चढ़े। कुछ एक-दूसरे पर खड़े हो कर चढ़े। ऊपर से कूदे। कुछ ने कोटले का दरवाजा तोड़ा। मकदूनी सैनिक तब वहाँ मालव पुरुष स्त्री बच्चा जो सामने आया उसे काटते गये और बेहोश अलक्सान्द्र को उठा कर ले गये।

कुछ अच्छा होने पर अलक्सान्द्र नाव द्वारा रावी-चनाब संगम पर अपनी सेना के शिविर में गया। मालवों क्षुद्रकों से तब उसने समझौते की बात चलाई। उन लोगों के सौ या डेढ़ सौ मुखिया अपने रथों में बैठ वहाँ आये।

वे असाधारण डील और भव्य चेहरों वाले लोग थे। अलक्सान्द्र ने उनके स्वागत में बड़ा भोज किया। उन्होंने कहा हमने आज तक किसी की अधीनता नहीं मानी, पर अलक्सान्द्र असाधारण पुरुष और देवों का वंशज है, इसलिए उसका आधिपत्य मानते हैं।

दक्खिनी पंजाब और सिन्ध में कई और छोटे-छोटे संघराज्य और एकराज्य आगे अलक्सान्द्र के रास्ते में पड़े जिनमें से कइयों ने उसका सामना किया। अन्त में आजकल के हैदराबाद के स्थान पर बड़ी छावनी डाल कर और जल-सेनापति नियार्कस को समुद्र के रास्ते तट के साथ लौटने का आदेश दे उसने पच्छिम मुँह फेरा। जब उसने हिंगोल नदी पार की और नियार्कस ने मलान अन्तरीप लाँघा, तब वे भारत की सीमा से पार माने गये।

भारत के उत्तर-पच्छिमी अंचल को अधीन करने में अलक्सान्द्र को साढ़े तीन बरस लगे। उसके मुँह फेरते ही यहाँ बलवे होने लगे। मालवों के देश में अलक्सान्द्र की छाती में जो घाव हुआ था उसके कारण घर पहुँचे बिना रास्ते में ही ईरान-खाड़ी के ऊपर की बाबिल नगरी में उसकी जान जाती रही (३२३ ई० पू०)।

२. चन्द्रगुप्त मौर्य

नव नन्द राजा समृद्ध और शक्तिशाली थे, पर प्रजापीडक भी।

महात्मा बुद्ध के समय हिमालय की तराई में आजकल के चम्पारन जिले में पिप्पलीवन के मोरिय या मौर्य लोगों का छोटा सा संघराज्य था। अजातशत्रु के वृजिसंघ को जीत लेने के बाद वह भी मगध साम्राज्य में चला गया था। उन मौर्यों के नेता चन्द्रगुप्त ने अब प्रजापीडक नन्द के विरुद्ध राजद्रोह किया। नन्द सम्राट् ने उसे मारने की आज्ञा निकाली। पर चन्द्रगुप्त बच निकला और उसने नन्द सम्राट् को उखाड़ने का संकल्प कर साम्राज्य में उपद्रव आरम्भ किये।

चन्द्रगुप्त ने मगध पर कई आक्रमण किये, किन्तु

प्रत्येक आक्रमण में हारा और भाग आया। ऐसी कहानी है कि एक रात उसने किसी बुढ़िया के घर शरण ली। उसे बड़ी भूख लगी थी। बुढ़िया ने खिचड़ी पका कर परोसी। वह एकदम थाली के बीच से खिचड़ी उठा कर मुँह में डालने लगा, तब उसका मुँह जला। बुढ़िया ने यह देख कर कहा—तू तो चन्द्रगुप्त जैसा उतावला है।

उसने पूछा—क्यों, चन्द्रगुप्त कैसा उतावला है?

बुढ़िया ने कहा—चन्द्रगुप्त नन्द का साम्राज्य जीतना चाहता है और सीधा उसके केन्द्र पर हमला करता है, यह नहीं कि पहले किनारे के प्रान्तों को ले ले और फिर वहाँ से केन्द्र की ओर बढ़े। तू भी उसी की तरह यह नहीं देखता कि किनारों की खिचड़ी पहले ठंडी होती है और उसे खाते-खाते बीच की भी खाने लायक हो जाती है।

कहते हैं चन्द्रगुप्त ने बुढ़िया की यह शिक्षा गाँठ बाँध ली और पंजाब पहुँचा। वहाँ तक्षशिला के विद्वान् विष्णुगुप्त से उसका मिलना हुआ। विष्णुगुप्त अपने उपनाम चाणक्य और कौटल्य से प्रसिद्ध है। कहते हैं वह भी एक बार नन्द की सभा में गया था और वहाँ उसे अपमानित होना पड़ा था। नन्द के छिछोरेपन का यों

उसे भी तजरबा हो चुका और वह भी नन्द को उखाड़ने की धुन में था। यों इन दोनों असाधारण समान-संकल्प पुरुषों का साथ हो गया। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को अपना गुरु माना और आगे उसी की सलाह से चलता रहा।

अलक्सान्दर जब तक्षशिला में था तब चन्द्रगुप्त उससे भी मिला। चन्द्रगुप्त की उससे कुछ खरी खरी बातें हो गईं और अलक्सान्दर ने भी उसे मारने की आज्ञा दी। पर चन्द्रगुप्त फिर बच निकला। अलक्सान्दर के सेना-संघटन और सेना-संचालन के तरीकों को चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने बड़े ध्यान से देखा समझा। उनमें जो विशेषताएँ थीं उन्हें उन्होंने भारत की सेनाओं में भी अपनाने का निश्चय किया। अलक्सान्दर के जाने के बाद उन्होंने पंजाब-सिन्ध की जनता को उभाड़ कर यूनानी सेना को मार भगाया। तब पंजाब से बड़ी सेना खड़ी कर उन्होंने नन्द सम्राट् की सेना को धकेलते और साम्राज्य के बाहरी प्रान्त पहले लेते हुए पाटलिपुत्र को जा घेरा। नन्द मारा गया, चन्द्रगुप्त भारत का सम्राट् बना।

अलक्सान्दर के पीछे उसका साम्राज्य कई टुकड़ों में बँट गया। पच्छिमी से मध्य एशिया तक का भाग

सेलेउकस् (अर्थात् सेलेउक) नामक सेनापति को मिला। सेलेउक ने पंजाब-सिन्ध को वापिस लेने के लिए भारत पर चढ़ाई की। उसके सिन्ध नदी पार करते ही चन्द्रगुप्त ने उसका सामना किया और उसे पूरी तरह हराया। सेलेउक को तब काबुल, कन्दहार, हरात, कम्बोज प्रदेश और आजकल का बलोचिस्तान भी मौर्य साम्राज्य को सौंपना पड़ा। उसने अपनी बेटी चन्द्रगुप्त को ब्याह दी, और अपना दूत मौर्य दरबार में पाटलिपुत्र में रक्खा।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने आचार्य चाणक्य की सलाह से भारत में दृढ और न्यायपूर्ण शासन स्थापित किया और देश को सब प्रकार उन्नत और समृद्ध किया।

भारत के ग्रामों, नगरों और जनपदों अर्थात् प्रदेशों में तब अपने अपने क्षेत्र का शासन चलाने के लिए सभाएँ होती थीं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने उन सभाओं के आधार पर और उनके सहयोग से भारत के साम्राज्य का ढाँचा खड़ा किया और साम्राज्य के लिए सेना जुटाई।

संसार के दूसरे देशों के किसान-जमींदार तब अपनी खेतीबारी दासों से करवाते थे। यूनान में एक एक किसान के दस दस दास होते थे। भारत में वैसी दासता नहीं थी।

यहाँ के किसान अपनी खेती स्वयं करते थे। घरेलू सेवा के लिए थोड़ी बहुत दासता यहाँ भी थी। उसे भी चाणक्य ने हटा देने का भरसक यत्न किया।

आचार्य चाणक्य का लिखा अर्थशास्त्र नाम का ग्रन्थ है, जिसमें उसके देश-शासन-सम्बन्धी विचार प्राप्त होते हैं।

भारत के अनेक प्रान्तों में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के कार्यों की याद शताब्दियों तक रही। सुराष्ट्र में आज-कल के जूनागढ़ या गिरनार के पास पहाड़ में बाँध बना कर पहाड़ी नदियों का पानी रोक कर चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए एक बड़ा जलाशय बनवाया, जो उसके पीछे शताब्दियों तक रहा। गिरनार को तब गिरिनगर कहते थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने लगभग ३२२ ई० पू० से २९८ ई० पू० तक राज किया।

३. प्रियदर्शी अशोक

चन्द्रगुप्त के बाद उसके बेटे बिन्दुसार ने उसी की तरह योग्यता से पचीस-एक बरस राज किया। उसके प्रशासन के आरम्भ में आचार्य चाणक्य के ही पथदर्शन में गोदावरी से कावेरी तक के १६ राज्य जीत कर मौर्य साम्राज्य में मिलाये गये। मौर्यों की सेनाएँ कोंकण से कर्णाटक तक पहाड़ों पर रास्ते बनाती और उन रास्तों पर अपने रथ दौड़ाती बढ़ती गईं। वे मदुरा के दक्खिन तक जा पहुँचीं, पर पीछे दक्खिनी छोर से हट आईं। कर्णाटक तक मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित हो गया; तमिळ केरल प्रदेश उसके बाहर रहे।

मौर्य साम्राज्य में समूचा भारत पाँच मण्डलों में बाँटा गया था (१) मध्यदेश (२) प्राची अर्थात् पूरब

(३) दक्षिणापथ (४) पश्चिम देश और (५) उत्तरापथ। कुरुक्षेत्र के उत्तरपच्छिम के सब जनपदों को मिला कर प्राचीन भारत के लोग उत्तरापथ कहते थे। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। बिन्दुसार के प्रशासन के पिछले अंश में तक्षशिला नगरी साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़ी हुई।

सम्राट् बिन्दुसार ने चम्पा (भागलपुर) की एक अति सुन्दरी ब्राह्मणी से विवाह किया था, जिससे उसका अशोक नामक बेटा हुआ था जो बचपन से ही प्रचण्ड स्वभाव का था। बिन्दुसार ने उसे अब तक्षशिला के विद्रोह के शमन या दमन के लिए भेजा। कुमार अशोक जब तक्षशिला के निकट पहुँचा तब "तक्षशिला के पौर नगरी से साढ़े तीन योजन आगे तक सारे रास्ते को सजा कर मंगलघट लिये हुए उसकी सेवा में उपस्थित हुए, और बोले—न हम कुमार के विरुद्ध हैं, न राजा बिन्दुसार के, किन्तु दुष्ट अमात्य हमारा पराभव करते हैं।" यों अशोक ने बिना खून की एक बूँद गिराये उस विद्रोह को शान्त कर दिया।

बिन्दुसार के प्रशासन में अशोक उत्तरापथ के अतिरिक्त पश्चिम देश का भी शासक रहा। पश्चिम देश की राजधानी उज्जयिनी थी। वहाँ जाते हुए रास्ते में विदिशा

(भिलसा) के एक श्रेष्ठी की लड़की असन्धिमित्रा से युवक अशोक ने विवाह किया। कारीगरों और व्यापारियों की सभाओं के प्रधान श्रेष्ठी कहलाते थे।

बिन्दुसार के पीछे अशोक ने राजगद्दी पाई। उसने अपने अभिषेक के आठवें बरस कलिंग देश पर चढ़ाई की। उड़ीसा के समुद्रतट का पुराना नाम कलिंग है। कलिंग जनपद बिन्दुसार के समय मौर्य साम्राज्य से तीन तरफ से घिर गया था। वह बड़ा शक्तिशाली था, इसी कारण मगध के इतना निकट होने पर भी बिन्दुसार ने उसे छेड़ा न था। उसकी हाथियों की सेना खूब सधी हुई थी। अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की तो वहाँ के लोग बड़ी वीरता से लड़े। एक लाख लड़ते हुए मारे गये, डेढ़ लाख कैद हुए, पीछे कई गुने बीमारी आदि से मरे।

कलिंग मौर्य साम्राज्य में मिल गया, पर उस युद्ध की बरबादी से अशोक के दिल पर चोट लगी। वह सोचने लगा "जहाँ लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देश-निकाला हो, वहाँ जीतना न जीतने के बराबर है।" भारत के दक्खिनी छोर पर चोल, पाण्ड्य, केरल और सिंहल ये नये राज्य स्थापित हुए थे। अशोक उनपर चढ़ाई करता

तो वे भी डट कर लड़ते और वहाँ भी वैसी ही बरबादी होती। अशोक ने उनके बारे में अपने अधिकारियों को लिखा—"सीमा पर के जो राज्य अभी जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में ··· मेरी ··· यही इच्छा है कि वे मुझसे डरें नहीं। वे यह मानें कि जहाँ तक क्षमा का बर्त्ताव हो सकेगा, राजा हमसे क्षमा का बर्त्ताव करेगा।"

उन राज्यों को अशोक जीत लेता तो उनमें भी बाकी साम्राज्य की तरह एक से नियम-कानून चल जाते। अशोक ने अब उन्हें समझा बुझा कर वहाँ मौर्य साम्राज्य के से नियम-कानून चलवा दिये। देशों को जीतने को हमारे पुरखा दिग्विजय अर्थात् दिशाओं को जीतना कहते थे। अशोक ने समझा-बुझा कर अपना प्रभाव फैलाने का जो नया तरीका निकाला उसे उसने धर्मविजय कहा।

इसके बाद उसने न केवल भारत के दक्खिनी कोने और सिंहल का, बल्कि दुनिया के जितने देशों को उस समय के भारतीय जानते थे, उन सब का धर्मविजय किया। उन सब देशों में उसने सड़कों पर पेड़ लगवाये, मनुष्यों और जानवरों के लिए चिकित्सालय खुलवाये, उनमें अपने चिकित्सक भेजे। सारे ईरान, पच्छिमी एशिया

और मिस्र के यूनानी राज्यों में उसने इस तरह अपना प्रभाव फैलाया।

अशोक की प्रेरणा से बौद्ध भिक्षु-संघ ने सब देशों में अपने धर्मोपदेशक भी भेजे। सिंहल में स्वयं अशोक का बेटा महेन्द्र गया। पटने में गंगा के जिस घाट से वह रवाना हुआ वह अब तक महेन्द्र घाट कहलाता है। सिंहल जाने से पहले वह अपनी माँ असन्धिमित्रा से मिलने विदिशा गया। वह तब विदिशा के पास अपने बनाये विहार में थी। साँची का बड़ा स्तूप जो अब भी विद्यमान है, उसी विहार का है।

सिंहल में उस समय विजय का वंशज तिष्य राज्य करता था। उसने अपनी बहुत सी प्रजा के साथ बौद्ध मार्ग स्वीकार किया। साथ ही उसने किसी बौद्ध भिक्षुणी को और बोधि-वृक्ष की शाखा को सिंहल भेजने की प्रार्थना की। तब महेन्द्र की सगी बहन संघमित्रा जो भिक्षुणी थी बोधिवृक्ष की डाल ले कर सिंहल गई। अशोक ने स्वयं बोधिवृक्ष के पास जा कर उसकी डाल काटी और ताम्रलिप्ति (मेदिनीपुर या मिदनापुर ज़िले में आधुनिक तामलूक) बन्दरगाह से उसे रवाना किया। संघमित्रा का जहाज जब

सिंहल के उत्तरी छोर पर जम्बुकोल (आधुनिक सम्बिल-तुरइ) पर लगा तब तिष्य ने स्वयं उसका स्वागत किया। बोधिवृक्ष की शाखा अनुराधपुर में रोपी गई। उससे बना हुआ वृक्ष वहाँ आज भी विद्यमान है और संसार भर के जाने हुए पेड़ों में वह सब से पुराना है। बीच में एक बार पुर्त्तगालियों ने उसे बहुत कुछ जला दिया था।

हिमालय में कश्मीर की राजधानी श्रीनगरी और नेपाल की पुरानी राजधानी ललितपत्तन या देवपत्तन, जो पातन नाम से काठमांडू के २½ मील दक्खिनपूरब अब भी विद्यमान है, अशोक ने ही बसवाई। नेपाल में अशोक की बेटी चारुमती अपने पति देवपाल के साथ जा बसी थी।

अशोक के प्रशासन में भी तक्षशिला नगरी एक बार फिर विद्रोह कर उठी। अशोक यह सुन स्वयं वहाँ जाने को उद्यत हुआ, पर पीछे अमात्यों के कहने से अपने बेटे कुनाल को भेजना तय किया। पाटलिपुत्र से उसे उसने बड़े सत्कार के साथ विदा किया। कुनाल के तक्षशिला के निकट पहुँचने पर फिर पहले की सी बात हुई। तक्षशिला के 'पौर' फिर मार्गशोभा

करके पूर्ण घट लिये हुए साढ़े तीन योजन आगे आये और हाथ जोड़ कुनाल से बोले—न हम कुमार के विरुद्ध हैं, न राजा अशोक के, किन्तु दुष्टात्मा अमात्य आ कर हमारा अपमान करते हैं। वे कुनाल को बड़े सम्मान के साथ तक्षशिला लिवा ले गये। वहाँ शासन करता हुआ वह 'पौर-जानपदों' अर्थात् नगर और प्रदेश के मुखियों का बहुत अनुरक्त हो गया।

कुनाल बचपन से ही अत्यन्त सुरूप और पिता का बहुत प्रिय था। उसकी आँखें हिमालय के कुनाल पक्षी की तरह सुन्दर थीं, इसी से अशोक ने प्यार से उसका नाम कुनाल रख दिया था। युवा होने पर उसका विवाह काञ्चनमाला नाम की युवती से हुआ था। अशोक ने रानी असन्धिमित्रा के मरने पर बुढ़ापे में तिष्यरक्षिता नामक युवती से विवाह किया था। तिष्यरक्षिता को कुनाल से बड़ी डाह हो गई थी।

पीछे एक बार राजा अशोक को बड़ी व्याधि हुई। उसका चिकित्सोपचार तिष्यरक्षिता के हाथ में रहा। तब उसे अपने 'वैरनिर्यातन' का अवसर मिला। उसने एक 'कपटलेख' तैयार कर तक्षशिला के 'पौर-जानपदों' के पास भेज दिया जिसमें

चित्र ६
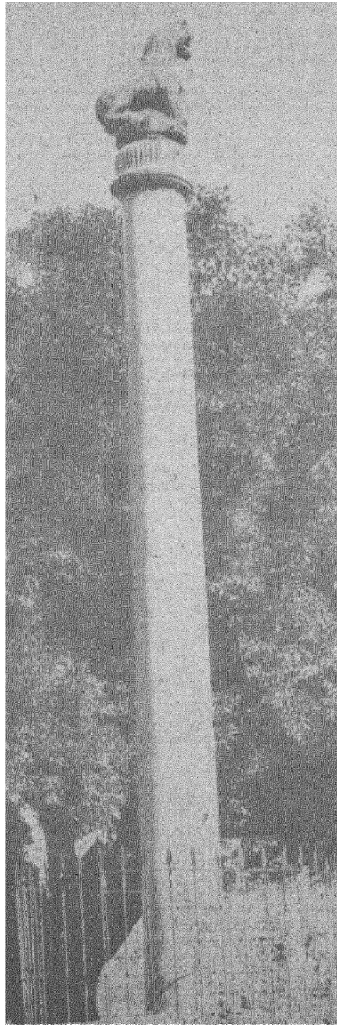
अशोक स्तम्भ, लौड़िया नन्दनगढ़ (चम्पारन) [भा० पु० वि०]

चित्र ७

गिरनार की चट्टान पर अशोक के लेख, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा [illegible] (१८९०)।

चित्र ८
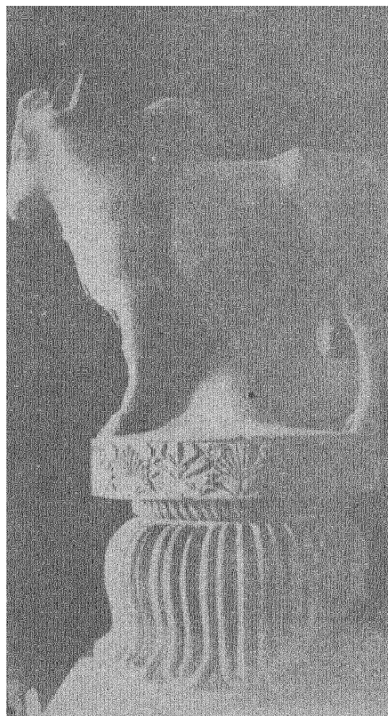
अशोक-स्तम्भ का वृष-मूर्त्ति वाला परगहा,

रामपुरवा (चम्पारन)

[भा० पु० वि०]

चित्र ९
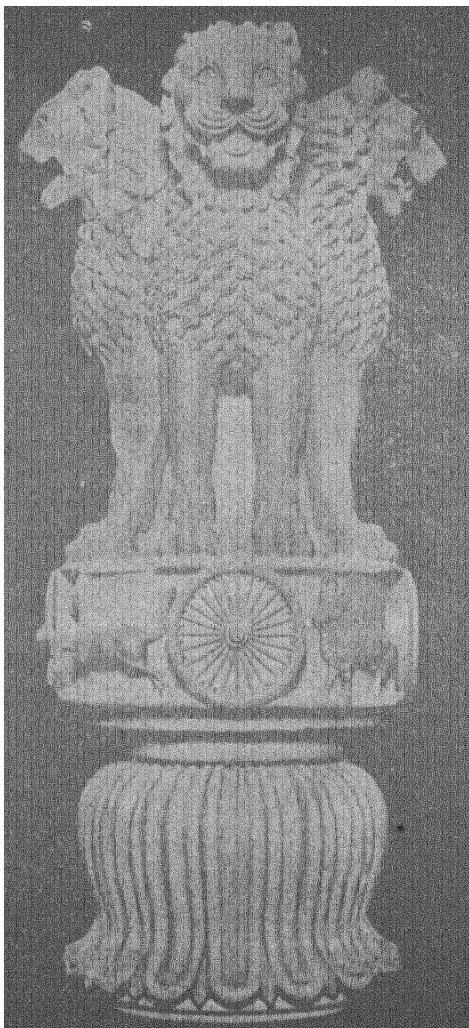
अशोक स्तम्भ का चौमुखं सिंह वाला परगहा, सारनाथ [भा० पु० वि०]

अशोक का यह आदेश था कि कुनाल की आँखें निकाल दी जायँ! तक्षशिला के 'पौर-जानपद' कुनाल से इतने प्रसन्न थे कि वे वैसा करने को उद्यत न हुए। किन्तु उन्हें राजा अशोक का डर भी था। उन्होंने राजा की आज्ञा कुनाल को दिखाई। कुनाल ने तब अपनी आँखें स्वयं निकाल दीं! काञ्चनमाला के साथ वह पाटलिपुत्र लौटा। अशोक को इस षड्यन्त्र का पता चला तो उसने तिष्यरक्षिता को जीता जलवा दिया और तक्षशिला के उन पौरों और अपने उन अधिकारियों को जो इस षड्यन्त्र में लिप्त थे, मरवा दिया या हिमालय पार निर्वासित कर दिया।

कम्बोज देश अर्थात् बदख्शाँ-पामीर चन्द्रगुप्त के समय से मौर्य साम्राज्य में था। पामीर के पूरब चीन की सीमा तक जो लम्बा मैदान फैला है उसे अब हम चीनी तुर्किस्तान कहते हैं। पर उस जमाने में न तो तुर्क लोग वहाँ आये थे, न चीन वाले पहुँचे थे। वहाँ जो लोग रहते थे वे बोली और रंगरूप में हमारे उत्तर भारत के आर्यों की तरह थे। पर तब तक वे न तो खेती करते और न गाँवों-शहरों में टिक कर रहते थे, बल्कि हमारे गूजरों की तरह पशुओं को पाल कर गुजारा करते और जंगलों में विचरते थे। करा-

कोरम पहाड़ से निकल कर रस्कम या जरफ्शाँ नदी उत्तर को बहती है, जिसे आगे यारकन्द दरिया कहते हैं। हमारे पुरखा उसे सीता कहते थे। चीनियों ने पीछे वही नाम ले लिया और अब तक उसे सी-तो कहते हैं। सीता तारीम में मिल कर आगे लोपनौर झील में गिरती है।

अशोक ने तक्षशिला के अपराधियों को सीता के काँठे में बसने को भेजा जहाँ उन्होंने खोतन उपनिवेश बसाया। उस प्रदेश में अशोक ने अपने धर्मानुशासक भी भेजे।

पूरब तरफ अशोक ने सुवर्णभूमि में भी अपने धर्म-दूत भेजे। भारत और चीन के बीच का वह विशाल प्राय-द्वीप तब तक घने जंगलों से घिरा था जिनमें शिकारी लोग विचरते थे। जैसा कि महाजनक की कहानी से हम जान चुके हैं उन जंगलों में भारत के लोग जा कर बस्तियाँ बसाने लगे थे, और उस महादेश को वे सुवर्णभूमि और उसके दक्खिन के द्वीपों को सुवर्णद्वीप कहते थे।

चीन और भारत के बीच एक तरफ सुवर्णभूमि, दूसरी तरफ सीता-तारीम का काँठा और बीच के रास्ते में तिब्बत पड़ता है। इन तीनों में से किसी के आरपार जा

कर भारत या चीन के लोग तब तक एक दूसरे से न मिले थे। इसी से पच्छिम के लोग तब तक चीन को स्पष्टतया न जानते थे। यदि जानते होते तो अशोक निश्चय से चीन का भी धर्मविजय करने का यत्न करता।

अशोक ने अपने सन्देश भारत के सब कोनों में कई चट्टानों पर या पत्थर के बड़े थम्भे खड़े कर उनपर खुदवाये। वे अब भी विद्यमान हैं। उन थम्भों पर जानवरों की सुन्दर मूर्त्तियाँ बनाई गई हैं। प्रत्येक थम्भा जो ४०-५० फुट ऊँचा है, एक ही एक पत्थर का है और वे सब पत्थर चुनार (बनारस के पास) की खदान के हैं। वहाँ से इतने बड़े भारी थम्भों को अशोक के कारीगर सैकड़ों मील दूर उठा कर कैसे ले गये यह देख कर आज भी अचम्भा होता है।

अशोक ने हमारे लिए जो सन्देश छोड़े हैं उनमें से एक में वह कहता है—"प्रियदर्शी राजा (अशोक) चाहता कि सब पन्थ वाले सब जगह आबाद हों। सभी संयम और भावशुद्धि चाहते हैं। प्रियदर्शी राजा सब पन्थ वालों का सत्कार करता है। वह मनाता है कि सब पन्थ वालों की बढ़ती हो।... इसका मूल है अपनी वाणी को वश में रखना,

जिससे अपने पन्थ का अति आदर और दूसरे पन्थ की निन्दा न की जाय।"

इस सुनहरे सन्देश पर हम ध्यान देते रहें तो हमारा देश सदा फूलता-फलता रहे।

अशोक ने २७७ ई० पू० से २३६ ई० पू० तक राज किया।

———